अंक : 91
(अक्तूबर-दिसम्बर, 2000)

राजभाषा भारती

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग

राजभाषा भारती

वर्ष : 22 अंक : 91
दिसंबर, 2000
निःशुल्क वितरण के लिए

संपादकीय

''राजभाषा भारती'' का अंक 91(अक्तूबर-दिसंबर, 2000) अपने सभी पाठकों को समर्पित करने में हमें अपार प्रसन्नता है। राजभाषा भारती के कलेवर, आवरण और साज-सज्जा के साथ-साथ उसमें संकलित विषय-वस्तु को नया आयाम देने का जो प्रयत्न विभाग ने अक्तूबर-दिसम्बर, 1999 के ''राजभाषा विशेषांक' से शुरू किया था उस प्रयास को निरन्तर बनाए रखने के लिए हम प्रयत्नशील हैं। वर्ष के दौरान प्रकाशित अंकों के बारे में हमें अपने पाठकों की उत्साहवर्धक प्रतिक्रियाएं प्राप्त होती रही हैं जिसके लिए हम आभारी हैं।

प्रस्तुत अंक में सम्मिलित लेखों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष डा. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव का लेख ''राजभाषा हिन्दी की श्रीवृद्धि में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का योगदान'' में शब्दावली निर्माण की पृष्ठभूमि, उसकी आवश्यकता और उपादेयता के बारे में सांगोपांग और सटीक विवेचन किया गया है, जिससे पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा और वे अत्यधिक लाभान्वित होंगे। डा. दिनेश मणि के लेख ''लोकप्रिय विज्ञान लेखन:भविष्य और संभावनाएं'' में यह उल्लेख किया गया है कि वैज्ञानिक और तकनीकी प्रकृति के लेखों को हिंदी में भलीभांति व्यक्त किया जा सकता है।

सूचना क्रांति के इस युग में विभिन्न देश एक दूसरे के अधिक निकट आए हैं। ''इंटरनेट'' के माध्यम से ''ई-कामर्स'' और ''ई-व्यापार'' तेजी से आगे बढ़ रहा है। इसी परिप्रेक्ष्य में श्री नवीन चंद जोशी का लेख ''साइबर अपराध, नैतिकता व समाज'' अत्यधिक प्रासंगिक है जिसमें इंटरनेट से हो रहे सकारात्मक लाभ के साथ-साथ साइबर अपराध पर भी रोशनी डाली गई है।

यह प्रयास किया गया है कि हिंदी में लिखे गए विभिन्न वैज्ञानिक और तकनीकी लेखों का समावेश प्रस्तुत अंक में किया जाए। इसी उद्देश्य की प्राप्ति में डा. मुकुल चंद पांडे का लेख ''भारतीय कृषि में जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान'' तथा श्री जे. पी. सिंह का लेख ''नवीनतम सूचना प्रौद्योगिकी एवं राष्ट्रीयकृत बैंक'' का विशेष महत्व है। अंक में संकलित अन्य लेखों से भी सभी पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा और उनके लिए यह अंक संग्रहणीय होगा, ऐसी हमारी आशा है।

उप संपादक :
(सुरेन्द्र लाल मल्होत्रा)
दूरभाष : 4698054

संपादक :
(डा. विजय पी. गोयल)
दूरभाष : 4617807

(पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। सरकार अथवा राजभाषा विभाग का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।)

पत्र-व्यवहार का पता :

संपादक, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, लोकनायक भवन (दूसरा तल) खान मार्किट, नई दिल्ली-110003

राजभाषा भारती अंक 91 (अक्तूबर-दिसंबर, 2000)

विषय-सूची

क्रम सं.	लेख का नाम	लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	राजभाषा हिंदी की श्रीवृद्धि में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का योगदान	डा. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव	1
2.	लोकप्रिय विज्ञान, भविष्य और संभावनांए	डा. दिनेश मणि	16
3.	साइबर अपराध, नैतिकता व समाज	नवीन चंद जोशी	20
4.	नवीनतम सूचना प्रोद्योगिकी एवं राष्ट्रीयकृत बैंक	जे. पी. सिंह	26
5.	भारत प्रेमी हंगरीदूत डा. गेजा : एक अत्मीय भेंट	प्रदीप कुमार अग्रवाल	29
6.	भारतीय कृषि में जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान	डा. मुकुल चंद पांडे	33
7.	भारतीय कृषि की मेरूदंड महिला कृषक	रेणु चौहान एवं सतीश अहूजा	36
8.	फिर बढ़ रहा है टी.बी. का प्रकोप	विनीता सिंगल	43
9.	सूर की नयन अभिव्यंजना	डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा	47
10.	मुहम्मद साहब और इस्लाम	प्रो. हरि नारायण ठाकुर	55
11.	महान समाज सुधारक:सर सैयद अहमद खान	नोतन लाल	60
12.	लाल बहादुर शास्त्री और उनका काव्य प्रेम	सुलेमान टाप	64
13.	नारी:एक अनुशीलन	दयानाथ लाल	68
14.	निजीकरण और हिंदी	डा. सोहन शर्मा	76
15.	गढ़वाली भाषा	डा. अचला नंद जखमोला	87
16.	रचनाकार का सच	राजेन्द्र उपाध्याय	96

राजभाषा हिंदी की श्रीवृद्धि में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का योगदान

—डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव

भूमिका :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संविधान निर्माताओं की एक प्रमुख चिंता सभी भारतीय भाषाओं के विकास की भी थी। गहन विचार मंथन के पश्चात 14 सितम्बर 1949 को यह निर्णय लिया गया कि राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को राजभाषा बनाया जाए तदनुसार संविधान में हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई और केन्द्रीय सरकार को यह दायित्व सौंपा गया कि वह हिंदी का विकास और प्रसार करें। उसी के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 351 में हिंदी के प्रचार-प्रसार के दायित्व तथा विकास की दिशा में संकेत देते हुए यह विशेष निर्देश दिया गया कि संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि हिंदी भाषा के प्रसार में वृद्धि करें तथा इसका इस तरह विकास करें कि यह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वो की अभिव्यक्ति का माध्यम बने तथा इसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और आठवीं अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए जहां आवश्यक और वांछनीय हों वहां उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए इसकी समृद्धि सुनिश्चित करें। तदनुसार भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने संविधान के अनुच्छेद 351 के अधीन हिंदी के विकास एवं समृद्धि के लिए अनेक योजनाएं शुरू की । इन योजनाओं में हिंदी में तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्यक्रम भी शामिल किया गया ताकि ज्ञान-विज्ञान की सभी शाखाओं में हिंदी के माध्यम से अध्ययन एवं अध्यापन हो सके। संविधान प्रदत्त दायित्व का निर्वाह करने के लिए सबसे पहले इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि सरकारी स्तर पर हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के लिए समान शब्दावली का विकास किया जाए। इसके लिए शिक्षा मंत्रालय ने 1950 में शिक्षा सलाहाकार की अध्यक्षता में भाषा विज्ञानियों और विज्ञानवेताओं का "पारिभाषिक शब्दावली बोर्ड" का गठन किया। 1952 में शिक्षा मंत्रालय के अधीन स्थापित हिंदी अनुभाग को सरकारी कर्मचारियों के लिए हिंदी शिक्षण, देवनागरी टाइपराइटर के कुंजीपटल, हिंदी वर्तनी, भारतीय भाषाओं की समान शब्दावली, करारों और समझौतों के अनुवाद तथा हिंदी पुस्तकों की प्रदर्शनी जैसे काम भी सौंपे गए। काम की बढ़ती मात्रा और विविधता को देखते हुए कुछ समय बाद ही हिंदी अनुभाग का विस्तार करके हिंदी प्रभाग की स्थापना की गई।

89 HA/2001—2A

हिंदी प्रभाग :

हिंदी प्रभाग ने 1959 तक शिक्षा क्षेत्र के सभी प्रमुख विषयों में उच्चतर माध्यमिक और कुछ विषयों की स्नातक स्तर की शब्दावलियां तैयार की। उन्हें अंतिम शब्द सूचियों के रूप में प्रकाशित कर संबंधित विषयों के विद्वानों और संस्थाओं को भेजा गया तथा प्राप्त सुझावों के अनुसार उनमें अपेक्षित संशोधन कर उन्हें अंतिम रूप से प्रकाशित किया गया। सरकारी कर्मचारियों के लिए सांध्यकालीन हिंदी कक्षाओं की व्यवस्था भी इसी प्रभाग के अधीन थी। इसी प्रभाग द्वारा हिंदी टाइपराइटर के कुंजीपटल के निर्धारण की दिशा में आरंभिक कार्य किया गया तथा आशुलिपि के लिए हिंदी का स्वनिमिक और रूपिमक विश्लेषण करवाया गया। भारतीय भाषाओं की तमाम शब्दावलियां तैयार की गई, करारों और समझौतों का मानक अनुवाद किया गया और हिंदी पुस्तक प्रदर्शनियां आयोजित की गई। गैरतकनीकी कोशों के निर्माण के लिए भी स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं को वित्तीय अनुदान दिया जाता रहा। इसी तरह हिंदी के विकास और प्रचार से संबंधित अन्य अनेक योजनाएं बनाई गईं।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग :

संविधान के संबंधित अनुच्छेदों में निहित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 1955-56 में राजभाषा आयोग की स्थापना की गई। आयोग की रिपोर्ट पर संसदीय समिति ने 1957-58 में विचार किया । उनके द्वारा दिए गए सुझावों के आधार पर भारत सरकार ने यह निश्चय किया कि हिंदी के प्रचार-प्रसार और विकास को गति देने के लिए सरकारी स्तर पर एक संस्था बनाई जाए। तदनुसार 1 मार्च, 1960 को तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालय के रूप में **''केंद्रीय हिंदी निदेशालय''** की स्थापना हुई। अब तक शिक्षा मंत्रालय का हिंदी प्रभाग जो-जो कार्य कर रहा था और विकास की जो नई-नई योजनाएं स्वीकृत हुई थी वे सभी इस निदेशालय को हस्तांतरित कर दी गई। इस तरह निदेशालय को हिंदी प्रभाग का सारा काम उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुआ। उस समय निदेशालय की योजनाओं में शब्दावली-निर्माण और पारिभाषिक कोश रचना जैसे विकासमूलक कार्यों का ही प्रधान्य था, अन्य प्रचार-प्रसार की योजनाओं पर अपेक्षाकृत कम बल दिया जाता रहा था। यह अनुभव किया गया कि यह काम बहुत अधिक विशाल, गहन और बहुआयामी है। इसके पूरे होने में बहुत समय लगेगा और इस कार्य के लिए सभी विषयों के विशेषज्ञों एव भाषाविदों की आवश्यकता होगी। अतः राष्ट्रपति के 27 अप्रैल, 1960 के आदेश के अनुसार भारत सरकार ने 1 अक्तूबर, 1961 को प्रख्यात वैज्ञानिक डा. डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में **''वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग''** की स्थापना की ताकि शब्दावली निर्माण का कार्य सही दिशा एवं गति से कार्यान्वित किया जा सके। शब्दावली निर्माण, पारिभाषिक कोश रचना और विश्वविद्यालय स्तर के मानक ग्रन्थों के अनुवाद/मौलिक लेखन का कार्य उसके कार्य क्षेत्र में आ गया।

89 HA/2001—2B

आयोग का प्रतीक चिह्न और आदर्श वाक्य :

केंद्रीय सरकार का कार्यालय होने के कारण भारत सरकार का प्रतीक चिह्न तीन शेर और आदर्श वाक्य 'सत्यमेव जयते' प्रत्येक प्रकाशन पर नियमानुसार अंकित रहता है किन्तु आयोग ने 1984 में ही अपना एक अतिरिक्त प्रतीक चिह्न और आदर्श वाक्य 'भारतीय भाषाओं में ज्ञान-विज्ञान' स्थिर किया।

आयोग के कार्य एवं उद्देश्य :

(क) हिंदी के संदर्भ में :

1. वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण के सिद्धांतों का निर्धारण करना तथा तकनीकी शब्दावली के क्षेत्र में अब तक किए गए कार्यों का पुनरीक्षण, समन्वय तथा समेकन ।
2. विभिन्न विषयों की मानक वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण, प्रकाशन, प्रचार एवं प्रशिक्षण।
3. आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रयोग को परिलक्षित करते हुए विभिन्न पारिभाषिक शब्द कोशों का निर्माण एवं प्रकाशन।
4. पाठमालाओं, मोनोग्राफ, चयनिकाओं एवं पाठ-संग्रहों का निर्माण एवं प्रकाशन।
5. विज्ञान तथा मानविकी आदि में उच्च स्तरीय विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्य ग्रन्थों के निर्माण एवं प्रकाशन के लिए सभी हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी ग्रंथ अकादमियों/विश्वविद्यालय एककों की स्थापना करना, उन्हें अनुदान देना एवं मार्गदर्शन प्रदान करना।
6. अखिल भारतीय शब्दावली का संकलन, प्रकाशन, प्रचार एवं अनुप्रयोग।
7. विज्ञान तथा मानविकी इत्यादि में उच्च स्तरीय लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए त्रैमासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन।
8. विश्वविद्यालयों एवं उच्च तकनीकी संस्थानों के प्राध्यापकों/वैज्ञानिकों आदि को अयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रशिक्षण देने एवं हिंदी में विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए शब्दावली कार्यशालाओं का आयोजन करना।
9. आयोग द्वारा निर्मित समस्त शब्दावली का कंप्यूटरीकरण करते हुए कंप्यूटर-आधारित राष्ट्रीय शब्दावली बैंक की स्थापना करना ताकि देश भर में सभी विषयों की अद्यतन मानक शब्दावली सर्वसुलभ हो सके।
10. कृषि, आयुर्विज्ञान एवं इंजीनियरी के सभी विषयों में विश्वविद्यालय-स्तरीय पाठ्य पुस्तकों, संदर्भ ग्रंथों एवं सहायक सामग्री का निर्माण एवं प्रकाशन।
11. शब्दावली के मानकीकरण की दिशा में प्रयोताओं के बीच सर्वेक्षण, समीक्षा तथा कार्यवाही करना।

(ख) अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में :

सभी अहिंदी-भाषी राज्यों में पाठ्य पुस्तकों के निर्माण, शब्दावली निर्माण एवं अन्य संदर्भ-ग्रंथों के निर्माण आदि के लिए केंद्रीय अनुदान, मार्गदर्शन, परामर्श एवं विशेषज्ञता प्रदान करना, उनके कार्यों का अखिल भारतीय स्तर पर समन्वय करना एवं पुनरीक्षण करना।

तकनीकी शब्दावली के अभ्यास, प्रशिक्षण एवं पुनरीक्षण के लिए अहिंदी-भाषा राज्यों के पाठ्य पुस्तक बोर्डों को तकनीकी शब्दावली कार्यशाला के आयोजन के लिए आर्थिक सहायता, मार्गदर्शन एवं विशेषज्ञता प्रदान करना।

आयुर्विज्ञान के शब्दों और वाक्यांशों के द्विभाषी संस्करण अर्थात् तमिल-हिंदी, मराठी-हिंदी, गुजराती-हिंदी आदि संस्करणों का निर्माण एवं प्रकाशन।

(ग) विविध कार्य :

आयोग के कार्यों का व्यापक प्रचार-प्रसार, विज्ञापन, प्रकाशनों का मुद्रण, बिक्री, वितरण, प्रदर्शनियों का आयोजन, विशेषज्ञ समितियों, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, समीक्षा समितियों, मूल्यांकन समितियों आदि की बैठकों का आयोजन आदि जैसे विविध कार्य करना है।

आयोग की उपलब्धियां :

हिंदी की तकनीकी शब्दावली का निर्माण :

विभिन्न विषयों की तकनीकी शब्दावली का निर्माण सन् 1950 से ही शिक्षा मंत्रालय के हिंदी एकक में शुरू हो गया था। मंत्रालय ने विविध विषयों की अनेक आरंभिक और अंतिम शब्दावलियां छापीं और विभिन्न विश्वविद्यालयों आदि के प्राध्यापकों को वितरित भी कीं। इसके बाद अनेक विषयों की अंतिम रूप से स्वीकृत शब्दावली भी अलग-अलग छायी गई। सन् 1962 में इन सभी शब्दों को एकत्र कर "पारिभाषिक शब्द संग्रह" के नाम से पहली बार छापा गया। इस शब्द संग्रह में लगभग 9000 शब्द थे। शब्दावली आयोग की स्थापना के बाद इस कार्य में बहुत गति आई। तब से आयोग ने विभिन्न विषयों की शब्दावलियों को अनेक शब्द संग्रहों के रूप में प्रकाशित किया है। अब तक कुल मिलाकर लगभग 35 शब्द संग्रह/शब्दावलियां छापी जा चुकी हैं जिनमें कुल मिलाकर लगभग 5.25 लाख तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्याय दिए गए हैं। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं:

1. बृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह : विज्ञान खंड 1, 2 पृष्ठ 2658
2. बृहत् परिभाषिक शब्द संग्रह : विज्ञान, हिंदी-अंग्रेजी पृष्ठ 819
3. बृहत् परिभाषिक शब्द संग्रह : कृषि विज्ञान
4. बृहत् परिभाषिक शब्द संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी
5. बृहत् परिभाषिक शब्द संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषजविज्ञान, नृविज्ञान
6. बृहत् परिभाषिक शब्द संग्रह : मानविकी

उपर्युक्त शब्दावलियों/शब्द संग्रहों के साथ-साथ आयोग ने कृषि, पशु चिकित्सा, कम्प्यूटर विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, धातुकर्म, नृविज्ञान, ऊर्जा, खनन इंजीनियरी, मुद्रण इंजीनियरी, रसायन इंजीनियरी, इलैक्ट्रानिकी, वानिकी, लोक प्रशासन, अर्थशास्त्र, खेलकूद, डाकतार, रेलवे शब्दावली, बृहत् प्रशासन शब्दावली, कोशिका जैविकी, गणित, भौतिकी, गृह विज्ञान, भूगोल, भूविज्ञान आदि विषयों पर भी शब्द संग्रह प्रकाशित किए हैं। इसी प्रकार आयोग ने ज्ञान विज्ञान की लगभग सभी आधुनिकतम शाखाओं के तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्याय बना लिए हैं।

आयोग द्वारा शब्द निर्माण प्रक्रिया :

शब्दावली आयोग में विभिन्न विषयों के एकक एवं अधिकारी हैं जो अपने विशिष्ठ विषयों की पाठ्य पुस्तकों, अद्यतन शब्दकोशों, विश्वकोशों एवं संदर्भ ग्रंथों की सहायता से पर्यायों का चयन करते हैं। पर्यायों को अंतिम रूप देने के लिए आयोग के ये अधिकारी अपने-अपने विषयों/उपविषयों/विषय की शाखाओं के विशिष्ट विद्वानों, विश्वविद्यालय एवं उच्चतर तकनीकी संस्थानों के विशेषज्ञों आदि को परामर्श के लिए आमंत्रित करते हैं। इन विशेषज्ञों एवं अनुभवी भाषाविदों के परामर्श से ही प्रत्येक विषय के पर्याय को अंतिम रूप दिया जाता है ताकि आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली को मानक स्वीकृति प्राप्त हो। इन शब्दावलियों पर समय-समय पर अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों एवं बैठकों में पुनर्विचार और आवश्यकतानुसार संशोधन एवं परिवर्धन भी किया जाता है।

शब्दावली निर्माण में आयोग की अधिकारिता :

राष्ट्रपति, के 27 अप्रैल, 1960 के आदेश के अनुसार सभी विषयों की शब्दावली के हिंदी पर्यायों के निर्माण का उत्तरदायित्व केवल वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंपा गया है। अत: शिक्षा, प्रशासन, अध्यापन आदि सभी क्षेत्रों में सभी पर यह बाध्यता है कि केवल शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित मानक शब्दावली का ही प्रयोग किया जाए। वस्तुत: पूरे देश में मानक शब्दावली के प्रयोग की वांछनीयता और एकरूपता की दृष्टि से यह अनिवार्य भी है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी सभी विश्वविद्यालयों आदि को यह निर्देश दिया है कि हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की पाठ्य पुस्तकों में केवल शब्दावली आयोग की शब्दावली का ही प्रयोग किया जाए। इसी प्रकार राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय ने भी प्रशासन के क्षेत्र में आयोग द्वारा निर्मित प्रशासनिक तथा अन्य शब्दावलियों के प्रयोग की बाध्यता का निर्देश दिया है।

प्रशासन शब्दावली :

संविधान में हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई है। तदनुसार हिंदी में प्रशासनिक शब्दावली की मानकता, एकरूपता और सर्वत्र स्वीकार्यता की दृष्टि से आयोग ने प्रशासन से संबंधित 12000 शब्दों का संकलन 'समेकित प्रशासन शब्दावली' के नाम से किया है। अब तक इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यह शब्दावली सभी विभागों, कार्यालयों आदि को नि:शुल्क भेजी जाती है। ताकि सभी कार्यालयों में हिंदी की मानक शब्दावली के प्रयोग को बढ़ावा मिले। इसके अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी दोनों संस्करण प्रकाशित किए गए हैं।

विभागीय शब्दावली :

विश्वविद्यालय में पढ़ाए जाने वाले विषयों के साथ-साथ आयोग विभिन्न सरकारी विभागों के अनुरोध पर उन विभागों की तकनीकी शब्दावली के हिंदी पर्यायों के निर्माण का भी कार्य करता है। विभागीय शब्दावलियों में अब तक डाक-तार, रेलवे, रक्षा, राजस्व, वैमानिकी, वानिकी, मौसम-विज्ञान, स्वास्थ्य, भौतिकी आदि का प्रकाशन किया जा चुका है। रेशम शब्दावली, कपास शब्दावली, कोयला शब्दावली, इलैक्ट्रानिकी शब्दावली, पैंशन शब्दावली, आसूचना ब्यूरो शब्दावली के पर्यायों को अंतिम रूप दिया जा चुका है। इनमें से कुछ प्रकाशित हो चुकी हैं तथा कुछ प्रकाशनाधीन हैं। इसके अतिरिक्त 15000 शब्दों से युक्त दूरसंचार शब्दावली का निर्माण भी लगभग पूरा हो चुका है। विभिन्न विभागों से हिंदी पर्यायों के निर्माण के लिए तकनीकी शब्दों की सूचियां समय-समय पर प्राप्त होती ही रहती हैं जिनका आयोग द्वारा हिंदी पर्याय निर्धारित कर संबंधित विभाग को भेज दिया जाता है या आवश्यकता अनुसार उनका प्रकाशन भी कर देता है।

शब्दावली का अद्यतनीकरण :

शब्दावली निर्माण एक निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। हर साल विश्व में विविध विषयों में हजारों नए शब्द आते हैं जिनमें से कुछ हजार शब्द ही वैज्ञानिकों द्वारा स्थायी रूप से अपनाए जाते हैं। इन शब्दों के हिंदी पर्याय बनाने का कार्य भी आयोग के विभिन्न विषय एकक निरंतर करते रहते हैं। इस प्रकार सभी विषयों की शब्दावलियों में संशोधन, परिवर्धन एवं अद्यतनीकरण निरंतर होता रहता है। आयोग ने हाल ही में जिन विषयों की शब्दावली में परिवर्धन करके उनके नए संस्करण बनाए हैं वे हैं : भूविज्ञान एवं विर्वतनिकी, भूगोल, रसायनिक इंजीनियरी, भौतिकी, गणित, कौशिका जैविकी, खनन इंजीनियरी आदि।

आयोग के सभी शब्द संग्रह मूलत: अंग्रेजी-हिंदी में हैं, क्योंकि स्रोत भाषा अंग्रेजी रही है। आयोग ने इनमें से अनेक शब्द संग्रहों के हिंदी-अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित किए हैं। इनमें विज्ञान के विषयों का शब्द-संग्रह, मानविकी के विषयों का शब्द-संग्रह, आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी शब्द-संग्रह एवं प्रशासनिक शब्दावली के हिंदी-अंग्रेजी संस्करण अब तक प्रकाशित किए जा चुके हैं।

राष्ट्रीय शब्दावली बैंक :

आयोग ने अपनी शब्दावलियों के प्रस्तुतीकरण एवं प्रकाशन की प्रक्रिया का आधुनिकीकरण करने के लिए कम्प्यूटर-आधारित राष्ट्रीय शब्दावली बैंक की स्थापना की है ताकि आयोग की शब्दावली सभी प्रयोगकर्ताओं को तुरंत उपलब्ध हो सके। इस कम्प्यूटरीकृत शब्दावली बैंक से यह लाभ होगा कि—

1. नए शब्दों को उनके अपने आकारादि क्रम में तत्काल भरा जा सकता है।
2. शब्दों में कभी भी संशोधन-परिवर्धन किया जा सकता है अथवा उन्हें हटाया जा सकता है।

3. शब्दों के हिंदी पर्याय तत्काल मालूम किए जा सकते हैं।

4. शब्दावली के तत्काल मुद्रण के लिए लेजर प्रिंट तैयार किए जा सकते हैं।

5. शब्दों को विषयवार या विषय-समूहवार या समेकित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

6. शब्दों के अंग्रेजी-हिंदी संस्करण या हिंदी-अंग्रेजी संस्करण या द्विभाषी संस्करण प्राप्त किए जा सकते है।

7. शब्दावलियां फ्लापियों तथा सी.डी. के रूप में प्राप्त की जा सकती हैं।

आयोग की यह योजना है कि राष्ट्रीय शब्दावली बैंक को शीघ्र ही राष्ट्रीय सूचना-विज्ञान केन्द्र के सर्वर पर आयोग की वेबसाइट "www.cstt.nic.in" के माध्यम से इंटरनेट सेवा से जोड़ दिया जाए ताकि शब्दावली प्रयोगकर्ताओं को तकनीकी पर्यायों की जानकारी देश-विदेश में कहीं भी तत्काल उपलब्ध हो सके।

शब्दावली निर्माण के अंतिम चरण में इस बैंक में अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी शब्दावली के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं की तकनीकी शब्दावली भी संगृहीत की जाएगी ताकि सभी भारतीय भाषाओं की तकनीकी शब्दावली एवं अखिल भारतीय शब्दावली एक ही स्थान पर सुगमता से सभी को उपलब्ध हो सके।

अखिल भारतीय शब्दावली :

सभी शिक्षकों, भाषाविदों एवं विद्वानों की यह धारणा है कि भारतीय भाषाओं की तकनीकी शब्दावली ऐसी होनी चाहिए जिससे सभी भाषाओं में परस्पर समरूपता हो ताकि उच्च शिक्षा, अनुसंधान, विज्ञान के आदान-प्रदान एवं सम्प्रेषण में सुविधा रहे तथा उनमें अखिल भारतीय स्तर पर एकरूपता एवं समानता स्थापित हो। सभी भारतीय भाषाओं में समानता का पहला आधार यह है कि हमारी अधिकांश भाषाएं संस्कृतमूलक हैं। संस्कृत मूल के शब्द काफी राज्यों में आसानी से स्वीकृत किए जाते हैं। इसी प्रकार उर्दू के शब्द भी भारतीय भाषाओं में समान रूप से मिलते हैं। इस प्रकार सभी राज्यों के लिए समान तकनीकी शब्दावली की खोज करना भी आयोग का एक उत्तरदायित्व था। तदनुसार 1980 से आयोग ने अखिल भारतीय शब्दावली योजना शुरू की जिसके अंतर्गत सभी राज्यों की भाषाओं से ऐसे शब्दों का संकलन किया गया जिन्हें अखिल भारतीय प्रयोग के लिए स्वीकार किया जा सकता था। इनकी सूचियों के निर्माण में विभिन्न भाषाओं के विद्वानों, वैज्ञानिकों एवं भाषाविदों की सहायता ली गई और उन्हें विषयवार सूचीबद्ध किया गया। इन शब्द सूचियों को सभी राज्यों में भेजकर उनके पाठ्य पुस्तक निर्माण मंडलों में काम करने वाले वैज्ञानिकों से उनकी भाषा में उन शब्दों के मानक पर्याय मंगवाए गए। इनके प्राप्त हो जाने पर आयोग ने विभिन्न स्थलों पर अखिल भारतीय संगोष्ठियां आयोजित कीं जिनमें सभी राज्यों के विद्वानों को आमंत्रित किया गया। इन संगोष्ठियों के परिणामस्वरूप विभिन्न विषयों के लगभग 20000 ऐसे शब्द संकलित कर दिए गए हैं जिन्हें अखिल भारतीय शब्दावली

के रूप में स्वीकारा गया है। इन शब्दों को आयोग ने विभिन्न विषयों की अखिल भारतीय शब्दावली के रूप में विषयवार प्रकाशित किया है। अब तक 18 शब्दावलियां प्रकाशित की जा चुकी हैं जिनमें से प्रमुख हैं—भूगोल, मानव भूगोल, प्रयोगिक भूगोल, समुद्र-विज्ञान, भौतिकी, खगोलिगकी, सामाजिक व सांस्कृतिक नृविज्ञान, अर्थशास्त्र व वाणिज्य, प्राणिविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, शिक्षा, मनोरोगविज्ञान, रसायन विज्ञान, भाषाविज्ञान, सांख्यिकी एवं आयुर्विज्ञान।

शब्दावली आयोग की यह योजना है कि सभी विषयों की अखिल भारतीय शब्दावली को अब एक ही संग्रह में प्रकाशित कर दिया जाए ताकि शब्द-निर्माताओं को ये शब्दावलियां एक ही ग्रंथ में उपलब्ध हो सकें।

आयुर्विज्ञान से संबंधित अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली एवं वाक्यांश :

सन् 1982 में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के अनुरोध पर आयोग ने आयुर्विज्ञान के आम प्रयोग के शब्दों और वाक्यांशों के दक्षिण भारतीय पर्यायों का संकलन करके उन्हें हिंदी के साथ प्रकाशित करने की योजना बनाई। इस योजना के अंतर्गत लगभग 5-6 हजार शब्दों का संकलन किया जा चुका है। ऐसे शब्दों और वाक्यांशों के प्रकाशन डॉक्टरों और अन्य चिकित्सा कर्मियों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे। तमिल, गुजराती, उड़िया, बंगला, पंजाबी तथा मराठी भाषाओं में इस कार्य को अंतिम रूप दिया जा रहा है।

परिभाषा कोशों का निर्माण :

विभिन्न विषयों में तकनीकी शब्दावली के निर्माण के बाद आयोग ने परिभाषा कोशों के निर्माण की योजना शुरू की। शब्दावली या शब्द-संग्रहों में अंग्रेजी तकनीकी शब्दावली तथा उनके हिंदी पर्यायों और उसके बाद 3-4 पंक्तियों में हिंदी में उसकी परिभाषा दी जाती है। परिभाषा कोश किसी भी विषय के तकनीकी शब्द संकल्पना को सही रूप से समझने में छात्र, अध्यापक, अनुसंधानकर्ता की बहुत सहायता करते हैं। वस्तुत: परिभाषा के आधार पर ही किसी शब्द को सही ठहराया जा सकता है। साथ ही परिभाषाओं से तकनीकी शब्दों के प्रयोग की क्षमता भी स्पष्ट हो जाती है। इस तरह परिभाषा कोश एक प्रकार से शब्दावली-निर्माण की प्रक्रिया के ही विस्तार के रूप में हैं क्योंकि तकनीकी शब्दों को उनकी परिभाषाओं के माध्यम से ही ठीक से समझा जा सकता है।

शब्दावली आयोग ने अब तक 48 परिभाषा कोश प्रकाशित किए हैं। इनका संबंध समाजविज्ञान, मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान आदि से है। इनमें विज्ञान के नवीनतम विषय उदाहरणार्थ—अर्थमिति, इलेक्ट्रानिकी, तरल यांत्रिकी, मानचित्र-विज्ञान, शैलविज्ञान, पादपआनुवंशिकी, कृषि कीटविज्ञान आदि भी शामिल हैं। इन परिभाषा कोशों की उपयोगिता की दृष्टि से अनेक विषयों के एक से अधिक परिभाषा कोश भी प्रकाशित किए गए हैं, जैसे वनस्पति विज्ञान के पांच परिभाषा कोश, रसायन विज्ञान के तीन, भूगोल के दो परिभाषा कोश आदि। आयोग जिन विषयों के परिभाषा कोशों के निर्माण कार्य आजकल कर रहा है वे हैं—दर्शनशास्त्र, कोशिका जैविकी, फिल्म तथा टेलीविजन, समालोचना, प्राकृतिक विपदा, पूंजी-बाजार इत्यादि।

पाठमालाएं, चयननिकाएं तथा पाठ संग्रह :

विश्वविद्यालय स्तरीय उच्च विषयों में अध्ययन तथा अध्यापन के लिए पाठ्य पुस्तकें ही पर्याप्त नहीं होती। अनेक गहन विषयों को ठीक से समझने के लिएं उच्च स्तरीय पत्रिकाओं एवं ग्रंथों में उपलब्ध सामग्री को पाठमाला, मोनोग्राफ, चयनिका एवं पाठ संग्रह के रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। पाठमाला एक लेखक द्वारा एक ही विषय में लिखित पुस्तिका के रूप में होती है जबकि पाठ-संग्रह एक ही विषय पर विभिन्न लेखकों के लेख संकलित किए जाते हैं। चयनिकाओं में भी अनेक शीर्षकों के अंतर्गत किसी भी विषय-समूह की अद्यतन जानकारी प्रस्तुत की जाती है।

आयोग ने ज्ञान-विज्ञान की अनेक पाठमालाओं, चयनिकाओं और पाठ संग्रहों का निर्माण और प्रकाशन 1980 से आरंभ किया था। अब तक 9 पाठमालाओं/पाठ संग्रहों एवं 10 चयनिकाओं का प्रकाशन हो चुका है।

मूलभूत शब्दावली :

1994 से आयोग ने मूलभूत शब्दावली के अंतर्गत विज्ञान की विभिन्न महत्वपूर्ण शाखाओं तथा अन्य विषयों की शब्दावलियां प्रकाशित करनी प्रारंभ की जिससे कि शब्दावली के प्रयोग को बढ़ावा मिल सके। इन शब्दावलियों में महत्वपूर्ण और मूल शब्दों को लिया जाता है और शब्दों का चयन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि ऐसे शब्दों का चयन किया जाए जिनका प्रयोग स्नातक, स्नातकोत्तर छात्रों, शोधार्थियों, अध्यापकों आदि द्वारा किया जाता है। आयोग ने अब तक भूविज्ञान, भूगोल, गणित, कम्प्यूटर विज्ञान, भौतिकी आदि की मूलभूत शब्दावलियां प्रकाशित की हैं। आयोग द्वारा आयोजित कार्यशालाओं में इन शब्दावलियों को नि:शुल्क वितरित किया जाता है तथा इन शब्दावलियों को मांग आने पर इन्हें नि:शुल्क भेजा भी जाता है। यह आशा की जाती है कि मूलभूत शब्दावली योजना के अंतर्गत प्रकाशित शब्दावलियों से प्रयोक्ता वर्ग को लाभ पंहुचेगा तथा यह योजना अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

शब्दावली कार्यशालाएं/नवीकरण कार्यक्रम :

पारिभाषिक शब्दों का तब तक कोई मूल्य नहीं जब तक वे वस्तुत: प्रयुक्त न हों। प्रयुक्त होने के बाद ही उसमें आवश्यक परिष्कार और संशोधन संभव है और तभी उनके प्रयोग में सहजता आती है। अत: आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का उद्देश्य शब्द संग्रह तक सीमित रहना नहीं है बल्कि विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षण में उसका प्रयोग होना भी उसका अंतिम लक्ष्य है। विश्वविद्यालय तथा कॉलेज में जिन विषयों का अध्ययन-अध्यापन हिंदी के माध्यम से होता है उनमें हिंदी तकनीकी शब्द स्थिर होते जा रहे हैं लेकिन जिन विषयों के अध्ययन-अध्यापन में हिंदी का प्रयोग नहीं हो रहा है या बहुत कम हो रहा है वहां हिंदी तकनीकी शब्दों की प्रयोग परीक्षा पूर्णत: नहीं हो पा रही है। आयोग द्वारा तकनीकी शब्दों के विकास/निर्माण का एक प्रमुख उद्देश्य यह था कि हिंदी तथा यथासंभव अन्य भारतीय भाषाओं के लिए समान तकनीकी शब्दावली का निर्माण हो ताकि अंतत: उन्हें मानक रूप प्रदान किया जा सके जिससे तकनीकी

विषयों में एक ही संकल्पना के विभिन्न शब्दों के प्रयोग से अराजकता उत्पन्न न हो। यदि आयोग द्वारा सुझाए गए किन्हीं पर्यायों के स्थान पर अध्यापक या प्रयोकता के स्तर पर अन्य पर्यायों का प्रचलन स्वीकृत हो गया हो तो आयोग पर्यायों में आवश्यक सुधार भी कर सकता है। इसके लिए अध्यापकों, लेखकों तथा छात्रों से फीडबैक प्राप्त करना जरूरी हो जाता है।

दूसरे, हिंदी माध्यम से पढ़ाने में अनेक अध्यापक हिंदी अच्छी तरह जानते हुए भी संकोच महसूस करते हैं। हिंदी शब्दावली तथा शब्दावली निर्माण की प्रक्रिया की जानकारी का अभाव भी सामान्यत: इसका एक कारण रहता है। इसीलिए प्रमाणिक हिंदी शब्दावली के प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से शब्दावली आयोग ने विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के अध्यापकों और सरकारी कार्यालयों, उपक्रमों, संस्थानों आदि में कार्यरत राजभाषा अधिकारियों के लिए 'शब्दावली कार्यशालाओं' या नवीकरण कार्यक्रमों की एक नई योजना आरंभ की है। इन कार्यशालाओं का उद्देश्य निम्न प्रकार है:—

1. वैज्ञानिक तथा शब्दावली आयोग द्वारा विकसित शब्दावलियों का प्रसार तथा उनके प्रयोग को बढ़ावा देना।
2. कार्यशालाओं में भाग लेने वाले अध्यापकों को उनके विषय से संबंधित शब्दावली से परिचित कराना तथा उनकी भाषायी क्षमता का विकास करना ताकि वे कुशलता के साथ हिंदी माध्यम से अपना विषय पढ़ा सकें।
3. आयोग द्वारा तैयार की गई पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग/प्रचलन की व्यापकता के विषय में जानकारी (फीडबैक) प्राप्त करना जिससे यथावश्यक संशोधन संभव हो सके।

कार्यशालाओं की कार्यप्रणाली :

पहले दिन विभिन्न विषयों की कार्यशालाओं का संयुक्त उद्घाटन समारोह होता है जिसमें सामान्यत: संबद्ध विश्वविद्यालयों के कुलपति मुख्य अतिथि होते हैं तथा शब्दावली आयोग के अध्यक्ष समारोह की अध्यक्षता करते हैं। दो दिन पारिभाषिक शब्द की व्याख्या, शब्दावली निर्माण के सिद्धांत, उनके विषय की अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली, अखिल भारतीय शब्दावली तथा परम्परा से प्राप्त शब्दावली आदि से परिचित कराया जाता है कि वे शब्दावली आयोग द्वारा अनुमोदित पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में आने वाली कठिनाइयों तथा अपनी शंकाओं को प्रस्तुत करें और यदि वे कक्षाओं अथवा पुस्तकों में आयोग की शब्दावली के अतिरिक्त किन्हीं अन्य शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं तो उनकी जानकारी दें। इस संबंध में उनके द्वारा व्यक्त विचारों को सावधानी से रिकार्ड किया जाता है ताकि शब्दावली आयोग उन पर पूरी तरह से विचार कर सके। उनके सुझावों के आधार पर शब्द कोशों के अगले संस्करण में आवश्यक संशोधन/परिवर्धन करने का प्रयास किया जाता है।

कार्यशाला की शेष अवधि में विभिन्न विषयों से संबद्ध भाषायी क्षमता के विकास पर सहभागी अध्यापकों का ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इस दौरान संबद्ध विषयों को पढ़ाने वाले ऐसे वरिष्ठ प्राध्यापकों को विशेष व्याख्यान (मॉडल लेक्चर) देने के लिए आमंत्रित किया जाता है जो

अपने विषयों को हिंदी माध्यम से पढ़ाने में सक्षम हैं। सहभागी अध्यापकों को भी अनुमोदित शब्दावली का प्रयोग करते हुए अपने विचार प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाता है।

इस योजना के अंतर्गत शब्दावली आयोग अक्तूबर 2000 तक विभिन्न विश्वविद्यालयों/संस्थानों में लगभग 350 तकनीकी शब्दावली कार्यशालाओं का आयोजन विभिन्न स्थानों पर कर चुका है। इन कार्यशालाओं में अब तक 8000 से अधिक सहभागी प्राध्यापकों को शब्दावली, मौलिक लेखन, अनुवाद आदि पर प्रशिक्षण दिया जा चुका है।

पत्रिकाएं 'विज्ञान गरिमा सिंधु' तथा 'ज्ञान गरिमा सिंधु' :

विश्वविद्यालयों एवं उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान कार्य में रत छात्रों, वैज्ञानिकों, प्राध्यापकों को उनके विषय की अद्यतन जानकारी देने के लिए हिंदी में मौलिक विज्ञान लेखन एवं स्तरीय अनुवाद को प्रोत्साहित करने के लिए तथा विज्ञान लेखन में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए एवं हिंदी के विज्ञान लेखकों को स्तरीय मंच प्रदान करने के लिए आयोग 1986 से 'विज्ञान गरिमा सिंधु' नामक त्रैमासिक पत्रिका का नियमित रूप से प्रकाशन कर रहा है। इस पत्रिका में उच्च स्तरीय लेख प्रकाशित किए जाते हैं। जनवरी 2000 से मानविकी तथा समाजशास्त्र के विषयों से संबंधित पत्रिका ''ज्ञान गरिमा सिंधु'' का प्रकाशन भी आयोग ने प्रारंभ कर दिया है।

विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रंथों का निर्माण :

तकनीकी शब्दावली का निर्माण हिंदी में पाठ्य पुस्तकों के निर्माण का पहला चरण है। माध्यम परिवर्तन के पूर्व यह अनिवार्य है कि प्रत्येक विषय में उचित संख्या में विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य पुस्तकों का निर्माण किया जाए। ये पुस्तकें न केवल विषय की दृष्टि से उच्च स्तरीय हों अपितु इनकी शब्दावली भी मानक हो और उनमें सर्वत्र एकरूपता हो। तदनुसार शिक्षा मंत्रालय ने 1959 से ही हिंदी में ग्रंथ निर्माण योजना का सूत्रपात किया। इस योजना के अंतर्गत स्वयं आयोग द्वारा एवं विभिन्न विश्वविद्यालयों/संस्थानों और राज्य सरकारों के माध्यम से और साथ ही निजी प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकों के अनुवाद, मौलिक लेखन के लिए शीर्षकों का चुनाव करने के उद्देश्य से विविध विषयों में 16 विशेषज्ञ समितियों का गठन किया गया और उसके परामर्श से इस कार्यक्रम के अंतर्गत अनेक पुस्तकें प्रकाशित की।

सन् 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं को विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए तेजी से प्रयास करने पर बल दिया गया। तदनुसार शिक्षा मंत्रालय ने प्रत्येक राज्य सरकार को विश्वविद्यालय स्तर के ग्रंथ के निर्माण के लिए एक-एक करोड़ रुपए देने की स्वीकृति दी। तब से इस योजना के अधीन विभिन्न राज्यों को आर्थिक सहायता दी जा रही है। इस योजना पर पुनर्विचार करने के लिए 1987 और 1994 में क्रमशः दलाल व कोल्हाटकर समिति का गठन किया गया। इन दोनों समितियों ने इस विषय पर अपनी सिफारिशें सरकार को प्रस्तुत कर दी हैं।

हिंदी भाषी राज्यों एवं अहिंदी भाषी राज्यों में अकादमियों आदि द्वारा अब तक कुल मिलाकर 12000 पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं।

शब्दावलियां इलेक्ट्रानिक फारमेट में :

सूचना प्रौद्योगिकी के इस क्रांतिकारी युग में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए इनके अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को बनाए रखने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न उपादानों को शब्दावली के विकास तथा विस्तार के लिए प्रयोग करने के लिए आयोग कटिबद्ध है। इसके लिए शब्दावली को इन्टरनेट पर ले आना, मल्टीमिडिया किट तैयार करवाना, जिसमें इलेक्ट्रानिक डायरी, सी.डी. इत्यादि प्रमुख हैं, पर कार्य प्रारंभ किया गया है। इलेक्ट्रानिकी विभाग (भारत सरकार) तथा शब्दावली आयोग के आपसी विचार-विमर्श के पश्चात यह तय हुआ कि हिंदी भाषा को सूचना प्रौद्योगिकी की चुनौतियों के लिए सक्षम बनाने हेतु आवश्यक है कि तत्काल ''सूचना प्रौद्योगिकी'' तथा ''कम्प्यूटर विज्ञान'' की विभिन्न विधाओं के तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्याय निर्धारित किए जाएं और उन्हें सी डी के रूप में उपलब्ध कराए जाएं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आयोग तथा इलेक्ट्रॉनिक विभाग ने एक संयुक्त परियोजना पर दिसम्बर 1999 से कार्य प्रारम्भ किया है। इस परियोजना में नोएडा स्थित ई.आर.डी.सी.आई. के विशेषज्ञों को भी सम्मिलित किया गया है। यह परियोजना 18 माह की है तथा इस पर बड़ी तेजी से कार्य चल रहा है। 10 अगस्त, 2000 को ''सूचना प्रौद्योगिकी शब्दावली' की सी.डी. का लोकार्पण माननीय श्री बच्ची सिंह रावत, राज्य मंत्री, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार ने किया है। इस सी.डी. में 10000 तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्याय दिए गए हैं तथा इसमें सरल अभिगमन तकनीक का प्रयोग किया गया है। साथ ही विभिन्न भारतीय भाषाओं को एक साथ प्रयोग करने हेतु साफ्टवेयर तैयार करने के लिए भारत सरकार के इलेक्ट्रानिक विभाग से संयुक्त परियोजना भी प्रारंभ की जानी है। आयोग का वेबसाइट "www.cstt.nic.in" डोमेन पर देखा जा सकता है जिसे राष्ट्रीय सूचना केन्द्र के सर्वर पर होस्ट किया गया है। इस वेबसाइट के माध्यम से विभिन्न विषयों की शब्दावलियों को इन्टरनेट पर ले आने का कार्य प्रारंभ कर दिया गया है। दूरभाष पर भी शब्दावली उपलब्ध कराने पर विचार किया जा रहा है।

प्रयोक्ता पर पहुंच :

प्रयोक्ता वर्ग तक अपने कार्य को तत्काल पहुंचाने के लिए आयोग ने कई प्रोत्साहन योजनाएं बनाई हैं जिनमें विभिन्न विश्वविद्यालयों, डिग्री कालेजों तथा शोध संस्थानों में ''शब्दावली क्लब'' की स्थापना, मौलिक पाठ्य पुस्तक तथा अनुवाद कार्य के लिए पुरस्कार, हिंदी में शोध प्रबंध लिखने पर शोध छात्रों को आर्थिक सहायता, शब्दावली निर्माताओं तथा इस क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वान विशेषज्ञों का सम्मान, राष्ट्रीय स्तर पर कोठारी स्मृति व्याख्यान, कक्षाओं में हिंदी में व्याख्यान देने पर विश्वविद्यालय के अध्यापकों को प्रति व्याख्यान रु. 500/- का मानदेय, मोनोग्राफ प्रकाशित करना तथा राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी में विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित करने की योजनाएं हैं। साथ ही साथ वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों की हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित पुस्तकों की एक राष्ट्रीय पुस्तकालय की स्थापना करना भी है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा विज्ञान मानविकी, समाजविज्ञान, आयुर्विज्ञान, कृषि, इंजीनियरी इत्यादि शाखाओं और उपशाखाओं में प्रकाशित पारिभाषिक शब्दकोश, शब्द-संग्रह, पाठमालाएं, चयनिकाएं, पत्रिकाएं इत्यादि शब्दावली आयोग के बिक्री केन्द्र तथा प्रकाशन विभाग (भारत सरकार)के विभिन्न बिक्री केन्द्रों से ही उपलब्ध हो पाती हैं जिससे सामान्यत: प्रयोक्ता को दिल्ली की ओर देखना पड़ता है। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा शोध संस्थाओं में यदि विज्ञान क्लबों की भाँति "शब्दावली क्लब" भी स्थापित किए जाएं तो शब्दावली आयोग के प्रकाशन उन स्थानों के शिक्षकों, छात्रों, अनुवादकों, लेखकों, पत्रकारों तथा प्रकाशकों को सुगमता से उपलब्ध हो सकेंगे। इस प्रकार शब्दावली का प्रचार-प्रसार भी बढ़ेगा और लोगों को हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पठन-पाठन तथा लेखन कार्य करने में प्रोत्साहन के साथ-साथ सुगमता भी रहेगी। "शब्दावली क्लबों" के माध्यम से शब्दावली आयोग के प्रकाशन दिल्ली से निकलकर शहर-शहर तक, कस्बों-कस्बों तक पहुंच सकेंगे तथा शब्दावली का "गंगावतरण" हो सकेगा। "शब्दावली क्लबों" में सभी प्रकाशनों को नि:शुल्क भेजने तथा पुस्तकों के रख-रखाव के लिए कुछ आर्थिक सहायता देने का भी प्रस्ताव है। शब्दावली क्लबों की स्थापना के पहले चरण में देश में लगभग सौ क्लबों की स्थापना का विचार है। अब तक सागर, इलाहाबाद, कानपुर, इम्फाल, दार्जिलिंग इत्यादि जगहों पर "शब्दावली क्लब" स्थापित किए गए हैं।

शब्दावली के प्रचार-प्रसार हेतु विश्वविद्यालयों/शोध संस्थाओं में आयोग द्वारा चलाई जा रही कार्यशालाओं की संख्या बढ़ाने की जरूरत है तथा दृश्य एवं श्रव्य मीडिया के नवीन उपादानों के प्रयोग से कार्यशालाओं में दिए जाने वाले व्याख्यानों की गुणवत्ता को और भी अधिक निखारा जा सकता है। ऐसी कार्यशालाओं को हिंदी भाषी प्रदेशों में तो आयोजित किया ही जाना चाहिए परन्तु इन्हें क्षेत्रीय भाषाओं तक ले जाना भी आज आवश्यक है। इसके लिए आयोग तथा अन्य भारतीय भाषाओं के पाठ्य पुस्तक मण्डलों के सहयोग से द्विभाषी कार्यशालाएँ आयोजित की जा सकती हैं। जैसे किसी भी विषय में हिंदी-मराठी, हिंदी-गुजराती, हिंदी-पंजाबी, हिंदी-बंगला, हिंदी-उड़िया कार्यशालाओं से प्रारम्भ कर हिंदी-तेलुगु, हिंदी-मलयालम तथा हिंदी-तमिल तक पहुँचा जा सकता है। ऐसी द्विभाषीय कार्यशालाएं नवीन संभावनाओं के द्वार तो खोलेंगी ही, राष्ट्रीय एकता तथा हिंदी को सम्पर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित भी करेंगी। आयोग के द्वारा निर्मित शब्दावली को प्रयोक्ता तक पहुंचाने, फीडबैक लेने, उसे कसौटी पर कसने तथा हिंदी पर्यायों के मानकीकरण हेतु "शब्दावली यात्रा" जैसे कार्यक्रम भी प्रारम्भ किए जाने हैं जिसमें शब्दावली आयोग के कुछ अधिकारी उच्च शिक्षा तथा शोध के प्रतिष्ठानों में जाकर व्याख्यान दें, पुस्तकों की प्रदर्शनी लगावें तथा लिखित में प्रयोक्ता की राय लें, जिनका विश्लेषण कर भविष्य की योजनाएं बनाई जा सकें।

आयोग द्वारा आयोजित कार्यशालाओं तथा अन्य अवसरों पर पुस्तकों की प्रदर्शनी तो लगाई ही जाती है परन्तु दिल्ली के आस-पास के हिंदी भाषी राज्यों में आयोग की "प्रदर्शनी-वैन" बराबर भ्रमण पर रहे, डिग्री कालेजों, सरकारी प्रतिष्ठानों में एक शहर में सात

दिनों तक घूमें तो आयोग की पुस्तकों की बिक्री बढ़ेगी तथा शब्दावली का प्रचार-प्रसार भी बढ़ेगा । अत: आयोग को कम से कम ऐसे दो प्रदर्शनी वैन तत्काल खरीद कर ''भ्रमण करती प्रदर्शनियां'' लगानी हैं।

आयोग ने अब तक विभिन्न विषयों की शब्दावलियों पर बहुत कार्य किया है। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए इस समय विभिन्न विषयों की उप-शाखाओं में शब्दावली को उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है जिससे हिंदी को उच्च शिक्षा के माध्यम रूप में लागू करने का कार्य त्वरित गति से पूरा किया जा सके तथा प्रश्न-पत्र स्तर तक शब्दावली उपलब्ध हो सके। हिंदी में आद्याक्षरों पर नवीन सोच की जरूरत है तथा आयोग इस संबंध में विद्वानों से विमर्श करने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर चुका है।

आयोग द्वारा विकसित शब्दावली के 'कोडिकरण' तथा 'मानकीकरण' का कार्य भी होना है। इसके लिए प्रयोक्ताओं के बीच सर्वेक्षण का कार्य जल्द ही प्रारंभ किया जाना है।

1994 में शिक्षा विभाग द्वारा 'कोल्हाटकर समिति' का गठन किया गया तथा हिंदी प्रदेशों की ग्रन्थ अकादमियों तथा अहिंदी भाषी राज्यों के पाठ्य पुस्तक मंडलों के क्रियाकलापों की समीक्षा का कार्य सौंपा गया था। कोल्हाटकर समिति ने मणिपुरी, नेपाली तथा कोंकणी भाषाओं में पाठ्य पुस्तक मंडलों की स्थापना की संस्तुति दी है। हिंदी प्रदेशों में हिमाचल ही एक ऐसा राज्य है जहां अब तक ग्रंथ अकादमी की स्थापना नहीं हो पाई है। इस दिशा में पहल होनी चाहिए तथा कश्मीरी भाषा में एक पुस्तक प्रकाशन सेल भी खोला जाना चाहिए।

पूर्वोत्तर राज्यों में पहल :

पूर्वोत्तर राज्यों में भाषागत विविधताओं, अंग्रेजी को कई राज्यों द्वारा राज्य की भाषा घोषित किया जाना तथा शिक्षा में क्षेत्रीय भाषाओं की शैशव अवस्था को देखते हुए आयोग ने इसे एक चुनौती के रूप में लिया है तथा सर्वप्रथम मणिपुर राज्य में मई 1999 में 7 दिनों की एक कार्यशाला मणिपुर विश्वविद्यालय, इम्फाल में राज्य के शिक्षा निदेशालय के भाषा प्रभाग के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित की गई। इस कार्यशाला का उद्घाटन मणिपुर राज्य के राज्यपाल महामहिम श्री ओ. एन. श्रीवास्तव ने किया तथा समापन कार्यक्रम मुख्यमंत्री श्री डब्लू. निमामाचा सिंह के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। सात दिनों की इस कार्यशाला में मणिपुरी भाषा के विद्वान वैज्ञानिक तथा शिक्षक इत्यादि बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए तथा उन सिद्धांतों को अन्तिम रूप दिया जिनके आधार पर मणिपुरी भाषा में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का निर्माण होना है। इस कार्यशाला में हुए विचार मन्थन का परिणाम अत्यन्त ही उत्साहवर्द्धक रहा तथा इसके पश्चात् इस वर्ष हुई दो बैठकों में भौतिक विज्ञान, प्राणि विज्ञान, मानविकी तथा समाजशास्त्र के विभिन्न विषयों में लगभग 20 हजार तकनीकी शब्दों के मणिपुरी पर्याय निर्धारित किए जा चुके हैं तथा अप्रैल, 2000 में होने वाली बैठक में इन्हें अन्तिम रूप दिया गया है तथा 5000 अन्य नए शब्दों को जोड़कर दिसम्बर 2000 तक मणिपुरी भाषा में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली को चार खण्डों में प्रकाशित किया जाना है। साथ ही साथ मणिपुरी भाषा में पाठ्य पुस्तक मंडल स्थापित करने के लिए एक करोड़ रुपया अवमुक्त करने का प्रस्ताव मंत्रालय के विचाराधीन है।

पूर्वोतर राज्यों में नागालैंड, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश तथा मिजोरम ऐसे राज्य हैं जिनकी राज्य भाषा अंग्रेजी है । अत: वहां पर शब्दावली आयोग को कार्य करने की कोई विशेष गुंजाइश नहीं है। त्रिपुरा में बंगला भाषा का प्रयोग होता है अत: वहां पर बंगाल टैक्स्ट बुक बोर्ड, कलकत्ता द्वारा किया गया कार्य उपयोगी रहेगा।

अरूणाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मुकुट मिथी, वहां के मुख्य सचिव तथा विभिन्न मंत्रालयों के सचिवों के साथ भी एक बैठक की गई है जिसमें इस विषय पर विचार-विमर्श किया गया कि राष्ट्रीय स्तर की एक कार्यशाला ईटानगर में रखी जाए जिसमें इस विषय पर विशेषज्ञों की राय ली जाए कि पूर्वोत्तर राज्यों की बोलियों को किस प्रकार समृद्ध किया जाए कि अध्यापन के लिए वे उपयोगी हो सकें।

सिक्किम राज्य में नेपाली भाषा में तकनीकी शब्दावली के विकास तथा टैक्स्ट बुक बोर्ड बनाने के लिए दार्जिलिंग में 12-15 जून, 2000 में एक कार्यशाला आयोजित की गई है तथा बोडो भाषा में शब्दावली के निर्माण के कार्य को भी नवम्बर 2000 में प्रारम्भ किया गया है।

समन्वय समिति क्यों ?

हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने कई अन्य संस्थाओं की भी स्थापना की है परन्तु ये संस्थाएं अपने-अपने ढंग से कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओं के बीच तालमेल का अत्यधिक अभाव है। एक दूसरे के संसाधनों के प्रयोग तथा एक दूसरे के क्रियाकलापों में हिस्सेदारी करने से राष्ट्रीय स्तर पर भाषा संबंधी कई समस्याएं हल हो सकती हैं तथा संयुक्त प्रयास से कुछ ठोस योजनाएं भी प्रारंभ की जा सकती हैं। राजभाषा विभाग, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय, विदेश मंत्रालय, सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय तथा शिक्षा विभाग के भाषा प्रभाग के बीच समन्वय स्थापित होना चाहिए । इसके लिए एक समन्वय समिति शिक्षा सचिव की अध्यक्षता में बनाया जाना चाहिए तभी राजभाषा हिंदी के विकास में आयोग द्वारा किए गए कार्यों को त्वरित गति प्रदान की जा सकेगी।

अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली—110066

लोकप्रिय विज्ञान लेखन : भविष्य और संभावनाएं

—डॉ. दिनेश मणि

लोकप्रिय विज्ञान लेखन का मूल उद्देश्य लोगों की रूचि को परिष्कृत करके उनमें सत्य को जानने एवं समझने की दृष्टि का विस्तार करना एवं उनमें प्रकृति को समझने की शक्ति विकसित करके उन्हें अंधविश्वासों से मुक्त करना है। ऐसा विज्ञान जो जन-सामान्य के ज्ञानवर्द्धन हेतु रोचक ढंग से लिखा, कहा या प्रदर्शित किया जाए जिससे कि सैद्धान्तिक पक्षों में उलझे बिना वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी हो सके, वह लोकप्रिय विज्ञान कहलाता है।

लेखन का अर्थ है चमत्कृत शैली में किसी ज्ञान को पूरी तरह प्रस्तुत करना जिसमें भाषा का प्रवाह हो, विषय वस्तु में पूर्वापर का पालन हो, जो प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित हो और पाठकों की जिज्ञासाओं का शमन करने वाला हो। लोकप्रिय विज्ञान की समृद्धि का और उसे साहित्य का दर्जा दिलाने का मानदण्ड यही है कि वह उपर्युक्त शर्तों का पूरक हो और इसका संकेत देता हो कि विश्व की अन्य भाषाओं की तुलना में हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में भी उसी स्तर का साहित्य उपलब्ध कराया जा रहा है। उसमें निरन्तर परिष्कार हो रहा है, उसकी समीक्षा हो रही है और सबसे आवश्यक बात यह है कि यह जन-जन तक पहुंच रहा है।

चूंकि हमारे समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग विज्ञान एवं तकनीकी विषयों को समझने के लिए हिंदी में प्रकाशित विज्ञान रचनाओं पर आश्रित है अत: ऐसी दशा में हिंदी के लोकप्रिय विज्ञान लेखकों के लिए अपने इस दायित्व को समझना और भी आवश्यक है। यदि हम अपने समाज को विज्ञान रचनाओं के नाम पर विदेशी भाषाओं में मात्र मनोरंजनार्थ लिखी गई रचनाओं के मनचाहे अनुवाद को पढ़ाते रहेंगे तो समाज कभी भी समय की जरूरत के अनुरूप नहीं ढल सकेगा। एक विकासशील समाज की समस्याएं एवं आवश्यकताएं एक विकसित समाज की समस्याओं एवं आवश्यकताओं से भिन्न होती हैं और इन समस्याओं से जूझने तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसको वही ज्ञान देना आवश्यक है जिसे वह अपने जीवन में प्रयुक्त कर सके।

विज्ञान समय के साथ जिस तेजी से प्रगति करता है उससे बहुत सा प्राचीन साहित्य पुराना (out dated) पड़ता जाता है। अत: वह वर्तमान में उपयोगी नहीं रह जाता। इसलिए लोकप्रिय विज्ञान के सतत लेखन की आवश्यकता बनी रहती है और नए विज्ञान लेखकों को अवसर मिलता है। सच्चा लोकप्रिय विज्ञान लेखक वही है जो बहुजन हिताय बहुजन सुखाय सोचे और लिखे। इसी से वह साहित्य में अमर रह सकेगा। लेखक का दायित्व गुरुत्तर होता है। उसकी दृष्टि जितनी दूरगामी होगी उतना ही अधिक समाज का कल्याण होगा। उसका कार्य कठिन इसलिए है कि उसे जनरूचि एवं विज्ञान की प्रगति में तालमेल बैठाकर लेखन करना होता है।

समाज में विज्ञान कोई बाहर से लाने की वस्तुत नहीं है। बल्कि विज्ञान समाज में चारों ओर बिखरा पड़ा है—भोजन में विज्ञान, पानी में विज्ञान, कृषि में विज्ञान, पर्यावरण में विज्ञान आदि आदि। कहने का आशय यह है कि जीवन में कदम-कदम पर विज्ञान है; प्रत्येक चीज के प्रत्येक पहलू में विज्ञान है। प्रत्येक चीज को जांच-परखकर तथा उसके आधार पर परिणाम प्राप्त करके पूरी तरह समझने के बाद सिद्धांत प्रतिपादित करना ही विज्ञान है। और जो साहित्य आम लोगों को इस प्रक्रिया की ओर बढ़ने की प्रेरणा दे, उनमें ऐसा दृष्टिकोण विकसित करे या फिर यूं कहिए कि जिस साहित्य को पढ़ने, सुनने अथवा देखने से व्यक्ति में विभिन्न वस्तुओं व स्थितियों के प्रति जिज्ञासा, रूचि, अवलोकन करने की आदत, सोचने और कल्पना करने की शक्ति तथा तर्कों एवं प्रयोगों के आधार पर किसी चीज की जांचने-परखने की क्षमता उत्पन्न हो तो वही विज्ञान साहित्य होगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि ऐसा वातावरण तैयार हो जिसमें विज्ञान साहित्यकार विज्ञान साहित्य का सृजन करने की ओर प्रवृत्त हो। साहित्य की प्रत्येक विधा-कविता, कहानी, नाटक, लेख, फीचर, समाचार आदि सभी में विज्ञान का समावेश हो।

ध्यातव्य हो कि विज्ञान-साहित्य में सृजन में मनचाहे शब्दों का उपयोग नहीं करना चाहिए। आज जब हिंदी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, दिल्ली से वैज्ञानिक विषयों के मानक शब्दकोश तथा पारिभाषिक शब्दावली प्रकाशित हो चुकी है और उपलब्ध है तो फिर मनचाहे शब्दों का प्रयोग क्यों किया जाए? भाषा का निर्माण स्वयं में एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है और इसमें जरा-सी लापरवाही अर्थ का अनर्थ कर सकती है। जहां तक विज्ञान का प्रश्न है, वह स्वयं में एक अनुशासित विषय है और इसकी शब्दावली में भी उतना ही अनुशासन अपेक्षित है। यही कारण है कि इसमें (वैज्ञानिक सिद्धांतों एवं परिकल्पनाओं में) शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों एक ही होते हैं। विज्ञान की अपनी भाषा होती है। इस भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक तथ्यों तथा गूढ़ रहस्यों को विभिन्न तकनीकी शब्दों के सहारे व्यक्त करता है। किन्तु इसे ग्राह्य भाषा के रूप में रूपांतरित करने या अनुवाद करने में अनेक कठिनाइयां होती हैं। मूल भाषा से अनुवाद करने में सबसे बड़ी बाधा उस मूल भाषा की विशिष्ट शैली होती है। उस शैली के सरलीकरण में तकनीकी शब्दों की भरमार के कारण अधिक वाक्य बनाने पड़ते हैं या नए शब्दों को गढ़कर उसके भाव को स्पष्ट करना पड़ता है। ऐसे में कहीं-कहीं उपयुक्त शब्द न मिलने से कठिनाई होती है। अनुवाद में मूल शैली का रूपांतरण अत्यन्त दुष्कर है। इसका कारण यह है कि इसके लिए अनुवाद को लेखक का मंतव्य केवल आत्मसात् ही नहीं करना पड़ता वरन अपनी कुशल लेखनी द्वारा मूल शैलीगत विशेषताओं को समझ लेने की पूरी क्षमता होनी चाहिए। उसे लेखक की शैली से पूर्णत: अवगत होने के बाद ही अनुवाद का कार्य आरम्भ करना चाहिए।

विज्ञान लेखन का अर्थ जनता को डराना नहीं-अपितु उसमें विश्वास उत्पन्न करना है, उसे आश्वस्त करना है। उसे ठगना नहीं, उसे लाभ पहुंचाना है। कभी भी चौंकाने वाले समाचारों को वरीयता न दें। जो सत्य है उसे ही अधिष्ठापित करें। ध्यानाकर्षण से अधिक आवश्यक है स्थायी विचारवल्लरी का पल्लवन। जो भी लिखा जाए, महान् उद्देश्य की पूर्ति स्वरूप हो। अनुकरण या पिष्टपेषण से बचें। लेखन का उद्देश्य समाचार या ज्ञान प्रदान करना ही नहीं होता। भाषा अथवा शैली सुधार या परिष्कार की दिशा में यह उपयोगी कदम होता है। जितना ही लिखा जाएगा उतना

89 HA/2001—3A

ही निखार आएगा। कभी भी अच्छा लेखक एक रात में या एक ही पृष्ठ लिखकर नहीं बनता। अनवरत् अभ्यास की आवश्यकता सभी को पड़ती है।

किसी भी भाषा से जब सरलता की मांग की जाती है तो वह अकारण नहीं है—सरलता उसका दायित्व है और सहज गुण है। किन्तु सरलता का क्या अर्थ है—वे कौन-कौन से तत्व हैं जिनसे सरलता का निर्माण होता है, यह निर्णय करना सरल नहीं है। ''सरल'' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के सिम्पुल शब्द के पर्याय के रूप में होता है और चूंकि हिंदी की सरलता के लिए अधिकतर वे ही लोग व्यग्र हैं जो अंग्रेजी में सोचने-समझने के अभ्यस्त हैं इसलिए सरलता का स्वरूप-विश्लेषण करने के लिए अंग्रेजी के ''सिम्पुल'' शब्द का आंचल पकड़े रहना जरूरी होगा। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार ''सिम्पुल'' शब्द के चार मुख्य अर्थ हैं—

1. अमिश्र—जिसकी रचना केवल एक ही तत्व से हुई हो, अखण्ड
2. जो उलझा हुआ या जटिल या अलंकृत न हो
3. निरपेक्ष, और
4. सीधा-सादा, अकृत्रिम, सहज, निष्छल।

विज्ञान तथ्यों पर अवलंबित है अतएव विज्ञान की भाषा का एकमात्र उद्देश्य सूचना देना है जबकि ललित साहित्य में भाषा का उपयोग भावनाओं को उभारने के लिए किया जाता है। लेकिन तथ्य (facts) तथा ललित कल्पना या कल्पना विलास (fantasy) में सर्वथा विलगाव नहीं है। ऐसा नहीं है कि विज्ञानी तथ्यों की तलाश करते हुए कल्पना विलास के क्षेत्र में प्रवेश न करता हो। हां, एक सीमित मात्रा में प्रवेश करता है।

विज्ञान में नई संकल्पनाओं के विकास के साथ ही वैज्ञानिक भाषा का विकास होता है क्यों कि भाषा को नए शब्द देने पड़ते हैं और पुराने शब्दों को बदलना पड़ता है। इस तरह से सामान्य भाषा वैज्ञानिक भाषा बनती जाती है। इस क्रम में ऐसा भी समय आ सकता है जब विज्ञान की भाषा अत्यन्त क्लिष्ट बन जाए और संकल्पनाओं में परिवर्तन के साथ उसे त्यागना पड़ जाए। उदाहरणार्थ 18वीं शती में सुप्रसिद्ध रसायन लेवोजिए के समय रसायन की भाषा का जो स्वरूप था, वह बाद में आमूल परिवर्तित हो गया।

भाषा की जटिलता सफल संप्रेषण का सबसे बड़ा शत्रु है। आज न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत आम आदमी भी आसानी से समझ लेता है, क्योंकि उन्होंने एक सेब के गिरने की प्रक्रिया के माध्यम से अपने सिद्धांत को प्रस्तुत किया। इसी तरह बोल्ट्जमैन सरीखे वैज्ञानिक बिलियर्ड के गेंदों के टकराव द्वारा गैसों के अणुओं का व्यवहार हमें समझा सके। संप्रेषण स्वयं में एक कला भी है और विज्ञान भी। यदि वैज्ञानिक सामग्री का कलात्मक प्रस्तुतीकरण नहीं होता तो लेखन अरूचिकर और अपठनीय होने लगता है। पर दूसरी ओर कलात्मकता चाहे जितनी भी डाल दी जाए, लेखन यदि तथ्यात्मक निश्चयात्मक से अभावग्रस्त है तो लेखन कभी सरल, सुपाचय और रूचिकर नहीं हो सकता।

संप्रेषण कला के विद्वान् डॉ. विल्बरश्रम के अनुसार किसी भी लेखन की पठनीयता दो बातों पर निर्भर करती है—(1) पुरस्कार की आशा तथा (2) पढ़ने में लगने वाला श्रम। पुरस्कार का रूप कुछ भी हो सकता है : मात्र मनोरंजन और मन बहलाव, तनाव-मुक्ति या ज्ञान-वृद्धि। अब यदि पुरस्कार की आशा कम तथा पढ़ने में कठिनाई हो तो पठनीयता शून्य की ओर पहुंचने लगती हैं और यदि पुरस्कार की आशा अधिक हो तथा पढ़ने में कठिनाई कम हो तो पठनीयता तेजी से बढ़ जाती है।

वैज्ञानिक साहित्य की रोचकता हेतु शैली की विविधता आवश्यक है। एक ही शैली में लिखी बात से एकरसता पैदा होती है तथा पाठक को मानसिक थकान होने लगती है। लेखक को वाक्यों की लंबाई का भी ध्यान रखना चाहिए। डॉ. एडोल्फ फ्लैश का कहना है, ''जब भी वाक्य की लंबाई 20 शब्दों से आगे बढ़ने लगती है तो वह कठिन होने लगता है। अत: कुशल विज्ञान लेखक वही होता है जो अपनी विषय-वस्तु को सुगम शब्दों, छोटे वाक्यों तथा नन्हें पैराग्राफों में निश्चयात्मक ढंग से कह सके।

कोई भी लिखी हुई सामग्री जब तक प्रकाशित नहीं हो जाती उसका कोई महत्व नहीं होता किन्तु वैज्ञानिक प्रकाशन की स्थिति हमारे देश में बहुत दयनीय है। प्रकाशक ''विज्ञान'' शब्द सुनकर ही चौंकता है। एक लेखक बड़ी मेहनत से विज्ञान विषयक एक सुन्दर पुस्तक तैयार करता है जिसके विषय का अनूठापन और भाषा का प्रवाह मन को बांध लेता है। पर पुस्तक प्रकाशित नहीं हो पाती है। छोटे-बड़े अनेक प्रकाशकों के द्वार खटखटाएं जाते हैं, पर सभी का स्तर प्राय: एक सा होता है। पुस्तक छाप तो लें, पर बेचेंगे कहां ? कोई भी विज्ञान के नाम पर जोखिम नहीं उठाना चाहता। विज्ञान के नाम पर अधिकांश प्रकाशक केवल वही पुस्तकें छापना चाहते हैं, जो किसी सरकारी खरीद कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वीकृत हो चुकी हों। पर ऐसे लोगों की संख्या अत्यल्प होती है, शेष लेखक भला क्या करें ? सरकार सीधे लेखकों को बढ़ावा दे सकती है—केवल वैज्ञानिक साहित्य के लिए और अधिक आकर्षक पुरस्कार योजना प्रारंभ करके। इसके अंतर्गत अनेक वर्गों में पुरस्कार दिए जाने चाहिए। साथ ही, पुरस्कृत पुस्तकों की एक निश्चित संख्या में खरीद का आश्वासन देकर सरकार प्रकाशकों में भी विज्ञान साहित्य प्रकाशन के प्रति रूचि उत्पन्न कर सकती है।

निश्चित रूप से आज लोकप्रिय हिंदी विज्ञान लेखन को एक आंदोलन का स्वरूप देने की आश्यकता है। इस दिशा में हिंदी विज्ञान लेखकों को एकजुट होने तथा समेकित प्रयास करके सरकार नहीं बल्कि सहकार पर अवलंबित होकर ईमानदारी से प्रयत्न करने होंगे तभी लोकप्रिय विज्ञान साहित्य का भंडार विपुल हो सकेगा।

डी एस सी, पूर्व संपादक 'विज्ञान' 47/29 जवाहरलाल नेहरू रोड, जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद-211002

साइबर अपराध, नैतिकता व समाज

—नवीन चंद जोशी

आज हम सूचना क्रांति के युग में रह रहे हैं। कंप्यूटरों के बढ़ते प्रयोग ने हमारी विश्लेषण करने, गणना करने, आकलन करने तथा सूचनाओं का प्रेषण करने की क्षमता को अत्यधिक विस्तृत कर दिया है। व्यवसाय और समाज में कंप्यूटरों के अवैध व अपराधिक मंशा से किए गए प्रयोग पर नियंत्रण करने में मदद करने के लिए प्रबंधकों, प्रशासकों और इन साधनों का उपयोग करने वाले लोगों को क्या उपाय करने चाहिए? दिन-प्रतिदिन बढ़ते साइबर अपराधों की संख्या ने सूचना क्रांति के दुष्प्रभावों को रोकने के संदर्भ में इस प्रश्न को अत्यंत महत्वपूर्ण बना दिया है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें कंप्यूटर के प्रमुख सामाजिक और आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करना होगा।

सामाजिक प्रभाव

कंप्यूटरों के प्रयोग से समाज को अनेक प्रत्यक्ष लाभ हुए हैं। आज कंप्यूटरों के सामाजिक उपयोग द्वारा अनेक मानवीय व सामाजिक समस्याओं का हल निकाला जा रहा है। इनमें चिकित्सा में बीमारियों का पता लगाना, कंप्यूटर के माध्यम से निर्देश देना, सरकारी कार्यक्रमों की योजना बनाना, पर्यावरणीय गुणवत्ता नियंत्रण तथा विधि प्रवर्तन आदि हैं। एक बीमारी का पता लगाने, आवश्यक उपचार निर्धारित करने तथा अस्पतालों में रोगियों की प्रगति पर निगरानी रखने में कंप्यूटरों की मदद ली जा रही है। कंप्यूटर के माध्यम से निर्देश भेजने में कंप्यूटर एक शिक्षक के रूप में कार्य कर रहा है तथा विभिन्न विषयों पर विद्यार्थियों की समस्याओं का निदान कर रहा है। इंटरनेट का नाम जुबान पर आते ही ऐसा लगता है जैसे हम विभिन्न विषयों की सूचना रखने वाले अनेक केन्द्रों से जुड़ गए हैं। वस्तुत: आज इंटरनेट पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक हर प्रकार की सूचनाएं उपलब्ध हैं और इन सूचनाओं का क्षेत्र इतना व्यापक है कि सहसा विश्वास ही नहीं होता। इस प्रकार यह समाज में ज्ञान के प्रसार में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

विभिन्न विधि प्रवर्तन उपयोगों के माध्यम से कंप्यटरों का प्रयोग अपराधों को नियंत्रित करने में किया जा रहा है। वे अपराधिक गतिविधियों की साक्ष्यों की पहचान करके उस पर तुरंत कार्यवाही करने में पुलिस की मदद कर रहे हैं। वायु तथा जल में प्रदूषण के स्तर की निगरानी करने, प्रदूषण के स्त्रोंतों का पता लगाने तथा उसके खतरे के स्तर तक पहुंचने से पूर्व ही चेतावनी देने में भी कंप्यूटरों का प्रयोग किया जा रहा है। अनेक सरकारी एजेंसियों की कार्यक्रम योजनाओं जैसे शहरी नियोजन, जनसंख्या घनत्व तथा भू-प्रयोग के अध्ययनों, राजमार्ग योजनाओं तथा नगर परिवहन अध्ययनों में भी कंप्यूटरों का प्रयोग किया जा रहा है। रोजगार प्रदान करने वाली

एजेंसियों में भी व्यक्तियों की योग्यता और उपलब्ध रोजगारों का मिलान करने में कंप्यूटरों की सहायता ली जा रही हैं । इस प्रकार इन उदाहरणों से यह सिद्ध है कि कंप्यूटर आधारित सूचना प्रणालियों का उपयोग समाज की समस्याओं का हल निकालने में सक्षम है।

आर्थिक प्रभाव

अर्थव्यवस्था में रोजगार ओर उत्पादकता पर कंप्यूटरों का प्रभाव स्वचालन प्राप्त करने के लिए कंप्यूटरों के प्रयोग से सीधे संबंधित है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कंप्यूटरों के प्रयोग से नए रोजगार उत्पन्न हुए हैं तथा उत्पादकता में वृद्धि हुई है। परंतु साथ ही कुछ प्रकार के रोजगार अवसरों में काफी कमी हुई है। कार्यालय सूचना निर्माण के लिए या मशीनी औजारों के संख्यात्मक नियंत्रण के लिए प्रयोग किए जाने वाले कंप्यूटर उस कार्य का संपादन कर रहे हैं जिसे कभी लिपिकों या मशीनों पर कार्य करने वाले व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। साथ ही, एक कंप्यूटर का प्रयोग करने वाले संगठन के अंदर कंप्यूटरों द्वारा सृजित रोजगारों के लिए कंप्यूटरों द्वारा समाप्त किए गए रोजगारों की तुलना में विभिन्न प्रकार की कुशलताओं व शिक्षा की आवश्यकता होती है। इसलिए, एक संगठन के अंदर व्यक्ति बेरोजगार हो सकते हैं जब तक कि वे नए पदों या नए दायित्वों के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर लेते। फिर भी, इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि कंप्यूटर उद्योग ने रोजगार के अनेक नए अवसर प्रदान किए हैं। चाहे वे कंप्यूटर निर्माण के क्षेत्र में हों, विक्रय तथा हार्डवेयर व साफ्टवेयर के अनुरक्षण के क्षेत्र में हों तथा अन्य सूचना प्रणाली या उत्पाद सेवाओं के लिए हों। इसी प्रकार कंप्यूटरों का प्रयोग करने वाले संगठनों व प्रतिष्ठानों में सिस्टम एनालिस्ट, कंप्यूटर प्रोग्रामर तथा कंप्यूटर आपरेटर जैसे नए रोजगारों का सृजन हुआ है। सेवा उद्योगों जो कंप्यूटर उद्योग तथा कंप्यूटरों का प्रयोग करने वाली कंपनियों का अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं, में भी रोजगार के अनेक नए अवसर पैदा हुए हैं। कंप्यूटरों के प्रयोग से जटिल औद्योगिक व तकनीकी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन संभव हो गया है और साथ ही इससे अतिरिक्त रोजगारों की उत्पत्ति हुई है।

अत: इस प्रकार उन गतिविधियों से भी रोज़गारों का सृजन हुआ है जो कंप्यूटरों पर अत्यंत निर्भर हैं। इनमें अंतरिक्ष अभियान, माइक्रो इलैक्ट्रानिक तकनीक तथा वैज्ञानिक अनुसंधान आदि सम्मिलित हैं।

इंटरनेट, ई-कामर्स, ई-मेल तथा डाट-काम उत्पाद सेवाएं कंप्यूटर क्रांति की ही देन हैं। बातचीत तथा खरीदारी करने से लेकर व्यापार तथा बैंको से लेन देन करने तक प्रत्येक सेवा और उप्पाद माऊस की एक क्लिक पर उपलब्ध हैं। आज आप दिल्ली में घर बैठें बैठे विभिन्न उत्पादों को खरीदने के लिए आर्डर दे सकते हैं। मुंबई में इंटरनेट पर पान तक उपलब्ध है। मध्य प्रदेश में आदिवासी क्षेत्रों में किसान इंटरनेट तथा ई-कॉमर्स द्वारा आज अपने उत्पादों का बाजार भाव जान सकते हैं जिसके लिए पहले उन्हें मीलों दूर की यात्रा करनी पड़ती थी। इसी प्रकार आंध्र प्रदेश प्रांत के कई जिलों से विभिन्न सूचनाएं एक ही जगह बैठे बैठे कंप्यूटर पर प्राप्त की जा सकती हैं। ऐसा प्रतीत होता हैं कि भविष्य में आर्थिक विकास की गति मशीनरी के स्थान पर सूचना और ज्ञान के आधार पर निर्मित होगी।

कंप्यूटरों के उपयोग से विभिन्न व्यावसायिक संगठनों के बीच व्यापारिक प्रतिस्पर्धा बड़ी है। छोटी-छोटी कंपनियों का बड़ी कंपनियों द्वारा अधिग्रहण किया जा रहा हैं। कंप्यूटरों के वृहद प्रयोग के लिए पूंजी के अभाव में छोटी कंपनियां या तो स्वयं ही समाप्त होती जा रही हैं या उनका बड़ी कंपनियों में विलय हो रही है। बड़ी कंपनियों की कुशलता तथा तकनीकी सर्वोच्चता उन्हें निरंतर वृद्धि करने तथा अन्य कंपनियों को अपने साथ मिलाकर अपने व्यवसाय को फैलाने का अवसर प्रदान कर रही है। इस प्रकार नित नए नियमों तथा महन्वपूर्ण व्यावसायिक गठबंधनों का उदय हो रहा है।

जीवन की गुणवत्ता पर प्रभाव

क्योंकि कंप्यूटरीकृत व्यापार प्रणलियां उत्पाकता में वृद्धि करती हैं, उनके कारण थोड़े प्रयास और समय में, कम लागत पर, बेहतर गुणवत्ता वाली वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन संभव होता है। इस प्रकार कंप्यूटर आंशिक रुप से जीवन के ऊंचे स्तर तथा जीवन के आनदों में वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं। इसके अतिरिक्त कंप्यूटर ने कार्यालय तथा कारखानों में उबाऊ या अरुचिकर कार्यों जिन्हें पहले व्यक्तियों द्वारा अंजाम दिया जाता था को समाप्त कर दिया है। अब वे अधिक चुनौतीपूर्ण व रूचिकर कार्यों में अपना ध्यान लगाकर अपनी कार्यकुशलता के स्तर को बढ़ा सकते हैं। अच्छी कार्यकुशलता यानि अच्छे रोजगार व तरक्की के अवसर तथा आय में वृद्धि और फिर बेहतर जीवन स्तर व रहन-सहन।

गोपनीयता पर प्रभाव

सूचना के संग्रह तथा उसे पुन: प्राप्त करने की कंप्यूटर की क्षमता का प्रत्येक व्यक्ति के गोपनीयता के अधिकार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। बैंकों, सरकारी एजेंसियों तथा निजी व्यापारी कंपनियों में कंप्यूटरों में डाली गई व्यक्तियों के बारे में गुप्त सूचनाओं का दुरुपयोग किया जा सकता है। इसके परिणामस्वरुप गोपनीयता के अधिकार का अतिक्रमण तथा अन्य अवैध कार्य किए जा सकते हैं। ऐसी सूचनाओं का अनधिकृत प्रयोग व्यक्तियों की गोपनीयता पर गंभीर आक्रमण होगा। आज जिस तरह हर क्षेत्र में कंप्यूटरों व इंटरनेट का प्रयोग हो रहा है उससे गोपनीयता के इस अतिक्रमण द्वारा साइबर अपराधों की संभावनाएं काफी बढ़ गई हैं।

कंप्यूटर या साइबर अपराध

कंप्यूटर अपराध क्या है? इन्हें कौन करता है? ऐसे अपराधों के शिकार कौन लोग हैं? साइबर अपराध की समस्याओं के क्या हल हैं? सूचना क्रांति के इस युग में ऐसे सवालों का जवाब जानना जरूरी है। कंप्यूटर या साइबर अपराध एक बढ़ता आंतक है जिसका कारण कंप्यूटर प्रयोगकर्ताओं के एक अल्प समुदाय के अपराधिक या उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य हैं तथा जो हमारे समाज में कंप्यूटरों के बढ़ते प्रयोग से फायदा उठा रहा है। यह जरुरी नहीं कि ये अपराधी कोई लंबी दाढ़ी मूंछ व भयावह शक्ल वाले ही हों। स्कूल के भोले-भाले छात्र, पढ़े-लिखे इंजीनियर तथा कंप्यूटर के प्रयोग से वाकिफ कोई भी व्यक्ति हो सकते हैं। ये अपराधी कंप्यूटर आधारित सूचना प्रणलियों तथा प्रभावी प्रणाली नियंत्रणों के विकास की सुरक्षा व्यवस्था के लिए एक महान चुनौती हैं।

अमेरिका की डाटा प्रोसेसिंग मैनेजमेंट एसोसिएशन ने कंप्यूटर अपराध को अधिक विशेषता से परिभाषित किया है। इसके मॉडल कंप्यूटर क्राईम एक्ट के अनुसार कंप्यूटर अपराध में निम्नलिखित रूप में सम्मिलित है:—

— हार्डवेयर, साफ्टवेयर या आकड़ों के स्रोतों का अनधिकृत रूप से प्रयोग करना, उन्हें प्राप्त करना उनका संशोधन करना तथा उन्हें नष्ट करना ;

— सूचना को अनधिकृत रूप से जारी करना;

— साफ्टवेयर की अनधिकृत रूप से नकल करना;

— एक प्रयोगकर्ता को उसके अपने हार्डवेयर, साफ्टवेयर या आकड़ों के स्रोतो की जानकारी प्राप्त करने से रोकना;

— अपराधिक आशय से कंप्यूटर संसाधनों का प्रयोग करना या प्रयोग के लिए षडयंत्र करना;

— अवैध रूप से सूचना या वस्तुत: संपत्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से कंप्यूटरों के माध्यम का प्रयोग करना;

— कंप्यूटर संसाधनों के साथ अनधिकृत प्रयोग के प्रायोजन से उन पर नियंत्रण स्थापित करने का उद्देश्य।

कंप्यूटर अपराध के प्रकारों में धन की चोरी, सेवाओं की चोरी, सूचना की चोरी, आकड़ों में हेरा-फेरी, प्रोग्रामों की नकल तथा उनको हानि पहुंचाना, आंकड़े नष्ट करना, हेकिंग या दुर्भावपूर्ण उद्देश्य से सूचना प्राप्त करना गोपनीयता का उल्लंघन आदि है। अभी हाल ही में भारत में भी कई साइबर अपराध प्रकाश में आए हैं। देश का पहला साइबर अपराधी दिल्ली में गिरफ्तार किया गया है। अत: यह स्पष्ट है कि कंप्यूटर आधारित सूचना प्रणलियां अपराधिक उद्देश्य से उनका प्रयोग करने वालों द्वारा अनेक प्रकार के उपराधों के लिए अत्यंत संवेदनशील हैं। कंप्यूटरों के बढ़ते प्रयोग तथा इंटरनेट सेवाओं के विस्तार ने साइबर अपराध की संभावनाओं को भी विस्तृत कर दिया है। अत: प्रभावी सूचना प्रणाली नियंत्रणों को विकसित करना आज अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण कार्य हो गया है। तभी एक पूर्णत: सुरक्षित सूचना प्रणालियों का उद्देश्य साकार हो सकेगा।

कंप्यूटर नैतिकता

क्या कंप्यूटर अपराध तथा कंप्यूटर क्षमता के अन्य दुष्प्रयोगों के विषय में प्रबंधकों, प्रशासकों तथा प्रयोगकर्ताओं का कोई उत्तरदायित्व है ? क्या उन्हें इस संबंध में कोई उपाय करने चाहिएं ? ये प्रश्न कंप्यूटर नैतिकता या साइबर नैतिकता के विषय हैं। कंप्यूटर व्यवसायियों, प्रबंधकों, प्रशासकों तथा प्रयोगकर्ताओं को अपने दायित्वों को स्वीकार करना चाहिए तथा मानवीय संसाधनों के रूप में अपनी भूमिका का उचित प्रकार संपादन करना चाहिए। यह किसी भी कंप्यूटर आधारित प्रणाली के लिए अनिवार्य है। नहीं तो अपने अनेक कार्य कलापों के लिए

कंप्यूटरों पर निर्भर एक समाज में गंभीर अराजकता फैलने का खतरा हमेशा विद्यमान रहता है। इस खतरे से बचने के लिए निम्नलिखित दिशा निर्देशों पर गौर किया जा सकता है:—

— ईमानदारी से कार्य करना,

— अपनी सक्षमता में वृद्धि करना,

— ऊँचे मानक स्थापित करना,

— अपने कार्य के दायित्व को स्वीकार करना, तथा

— जनता के स्वास्थ्य, गोपनीयता तथा सामान्य कल्याण को बढ़ावा देना।

ये दिशा-निर्देश प्रयोगकर्ताओं तथा विशेषज्ञों को कंप्यूटर अपराधों से बचने तथा सूचना प्रणालियों की सुरक्षा मजबूत करने में सहायता करेंगे।

साइबर कानून

दिशा-निर्देश आचरण के कोड तो हो सकते हैं परंतु वे अपने आप में कानून नहीं हैं क्योंकि उनमें कानून की बाध्यता का तत्व नहीं है। अमेरिका में कंप्यूटर अपराधों को रोकने के लिए अनेक कानून हैं जिनमें फेयर क्रेडिट एक्ट, फेडरल प्राइवेसी एक्ट, दि इलैक्ट्रानिक कम्युनिकेशंस प्राईवेसी एक्ट, कंप्यूटर फ्राड एण्ड अब्यूस एक्ट तथा एंटी.ट्रस्ट प्रमुख हैं। पिछले दिनों 'आई लव यू' नामक वायरस ने दुनिया भर के कंप्यूटर में बड़ा उत्पात मचाया। एक अनुमान के अनुसार इसकी चपेट में आए लोगों को कुल मिलाकर पच्चीस करोड़ अमरीकी डालर से अधिक की आर्थिक क्षति उठानी पड़ी। इस वायरस के कारण व्हाइट हाऊस, पेंटागन, सी.आई.ए., हाऊस आफ कामंस जैसी महत्वपूर्ण जगहों के कंप्यूटर कुछ देर के लिए ठप्प हो गए और उन पर आई लव यू संदेशों की झड़ी लग गई।

चीन ने भविष्य के कंप्यूटर वायरस हमलों के खिलाफ दो कानून लागू किए हैं। नए कानूनों में वायरस और वायरस रोधी साफ्टवेयरों के प्रभाव की पुष्टि व्यक्ति विशेष या किसी कंपनी से कराने के स्थान पर लोक सुरक्षा मंत्रालय द्वारा नामित संगठनों द्वारा कराने की व्यवस्था है। नए कानूनों की सहायता से चीन में वायरसरोधी प्रयासों को समन्वित किया जा सकेगा और वायरस रोधी साफ्टवेयर निर्माताओं के बीच अनुचित प्रतिस्पर्धा को समाप्त किया जा सकेगा।

कंप्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत का नाम भी दुनिया के अग्रणी देशों में लिया जा रहा है। इस समय भारत दुनिया भर को कंप्यूटर विशेषज्ञ उपलब्ध कराने वाले देश के रूप में मान्यता प्राप्त कर रहा है। अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, जर्मनी और फ्रांस आदि देशों में भारत के कंप्यूटर विशेषज्ञों की मांग दिनों दिन बढ़ती जा रही है। ऐसे कयास लगाए जा रहे हैं कि भारत एक दिन दुनिया में सूचना प्रौद्योगिकी का 'बादशाह' बन जाएगा, अत: इस दृष्टि से देश में एक विस्तृत और ठोस साइबर कानून के निर्माण के बारे में विचार किया जाना स्वाभाविक ही है। संसद के पिछले सत्र में कानून के माध्यम से देश के सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र को व्यवस्थित तथा कानून के दायरे में लाने का एक महत्वपूर्ण कार्य किया गया। नए कानून के परिणमस्वरूप इंटरनेट

सेवा का उपयोग करने वालों को यह अवसर मिलेगा कि वे अपने व्यापार तथा सूचनाओं में गुणात्मक वृद्धि कर सकें। पूरे सूचना प्रौद्योगिकी विधेयक का सबसे महत्वपूर्व पहलू-ई-मेल को कानूनी जामा पहनाना है। इसके अतिरिक्त इसका एक और उद्देश्य बढ़ते साइबर अपराधों को रोकना भी है। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि मौजूदा कानून (इन अपराधों के लिए भारतीय दंड सहिता में विद्यमान प्रावधानों सहित) इस क्षेत्र में आने वाले नित नए बदलावों के कारण कुछ वर्षों में ही अप्रासंगिक हो जाएंगे। इन बदलावों के कारण यह कहना मुश्किल है कि आगामी कुछ वर्षों में इस क्षेत्र की क्या तस्वीर होगी, सरकार बैंकिग, दूरसंचार, उड्डयन, परिवहन और तेल व गैस क्षेत्रों में नेटवर्क की संभावित गड़बड़ी से निपटने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति गठित करने पर विचार कर रही है। ऐसी भी संभावना है कि सरकार 15 अगस्त तक देश में एक साइबर कानून लागू कर देगी। परंतु यह सब अपने आप में एक शुरुआत भर होगी तथा साईबर अपराधों को रोकने की दिशा में इन कानूनों को अंतिम नहीं माना जा सकेगा।

13-सी, पाकेट-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली

नवीनतम सूचना प्रौद्योगिकी एवं राष्ट्रीयकृत बैंक

—जे.पी. सिंह

आज सम्पूर्ण विश्व में सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) का बोल-बाला है। चारों दिशाओं में कम्प्यूटरीकरण की चर्चा है और यह दिन प्रतिदिन प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में कम्प्यूटर प्रवेश कर चुका है। आज कम्प्यूटर की कई कंपनियां, उदाहरणार्थ 'विपरो', 'टाटा इनफोसीज़', 'सत्यम कम्प्यूटर' इत्यादि करोड़ों रुपयों की राशि अर्जित कर रही है। हैदराबाद स्थित सूचना प्रौद्योगिकी नगर (I.T. CITY) सचमुच ही विश्व में एक आई.टी. के व्यापार तथा ज्ञान का पावन मंदिर बन गया है जिसे कुछ मास पूर्व अमेरिका के राष्ट्रपति श्री कलिंटन भी देखने गए। आन्ध्र के मुख्य मंत्री श्री चन्द्र बाबू नायडू ने आई.टी. सिटी वाले क्षेत्र का नाम साइबराबाद (CYBERABAD) रख दिया है। आज आन्ध्र प्रदेश की आर्थिक उन्नति का मूल मंत्र है : सूचना प्रौद्योगिकी। बेंगलूर स्थित कम्प्यूटर कम्पनी विपरो (WIPRO) के अज़ीम प्रेम जी को संसार के सब से धनी व्यक्ति बिल गेट्स (BILL GATES) के पश्चात् द्वितीय स्थान पर घोषित किया गया। हैदराबाद तथा बेंगलूर नगरों ने सूचना प्रौद्योगिकी के आधार पर विश्व के मानचित्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

सूचना प्रौद्योगिकी से दैनिक कार्य में गति की अद्भुत वृद्धि होती है, ग्राहक सेवा में भरसक सुधार होता है। कंपनियों के व्यापार तथा लाभप्रदता में अत्यधिक वृद्धि होती है। हाथ कंगन को आरसी क्या? आज भारतवर्ष में, निजी क्षेत्र में नई पीढ़ी के बैंक तथा विदेशी बैंक, बैंकिंग क्षेत्र में अपनी सुगंधि फैला रहे हैं, जबकि राष्ट्रीयकृत बैंकों की औसत ग्राहक सेवा संतोषजनक नहीं है। निजी क्षेत्र तथा विदेशी बैंकों के वित्तीय परिणाम सचमुच ही प्रंशसनीय हैं। उदाहरणार्थ, निजी क्षेत्र के इंडस इंड बैंक (Indus Ind Bank) का 31 मार्च, 2000 की स्थिति के अनुसार प्रति कर्मचारी व्यापार (Business Per Employee) 19.92 करोड़ रुपए था तथा प्रति कर्मचारी आय (Income per employee) 10.01 लाख रुपए थी। इसके विपरीत राष्ट्रीयकृत पंजाब एण्ड सिंध बैंक के यही आंकड़े क्रमशः 1.29 करोड़ रुपए तथा 0.51 लाख रुपए हैं। कितना विशाल अंतर है?

निजी क्षेत्र के बैंकों की तथा विदेशी बैंकों की इस अद्भूत प्रगति से राष्ट्रीयकृत बैंकों के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती आ गई है और वह है: कड़ी प्रतियोगिता पहले कहावत थी कि बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है (THE BIG FISH EATS THE SMALL FISH), परन्तु अब इस कहावत में भी परिवर्तन आ गया है। अब तो तीव्र गति से दौड़ने वाली मछली मंद गति से रेंगने वाली मछली को निगल जाएगी (THE FAST FISH SHALL SWALLOW THE SLOW FISH)

ऐसी परिस्थितियों में राष्ट्रीयकृत बैंकों के समक्ष सूचना प्रौद्योगिकी को अपनाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रहा। वे शीघ्रातिशीघ्र कम्प्यूटरीकरण अपनाएं, अन्यथा वे अपना अस्तित्व भी खो बैठेंगे। उनके लिए तो एक सरलीकृत संदेश है :

"तू भी बदल फ़लक कि ज़माना बदल गया।"

यद्यपि भारतीय बैंकिंग उद्योग में कम्प्यूटरीकरण की प्रक्रिया 1984 में आरम्भ हो गई थी, तथापि केवल आंशिक कम्प्यूटरीकरण हुआ है। इस प्रक्रिया की गति अत्यंत धीमी रही। इसके दो मुख्य कारण हैं : एक तो कर्मचारियों में कम्प्यूटर के ज्ञान का अभाव तथा नकारात्मक दृष्टिकोण और दूसरा संघ नेताओं का कम्प्यूटरीकरण के प्रति कड़ा विरोध क्योंकि उन्हें यह आशंका थी कि कम्प्यूटरीकरण से बेकारी फैलेगी। जब कर्मचारियों ने यह देखा कि कम्प्यूटर के विशेषज्ञों की सारे विश्व में बड़ी मांग है और वे अत्यधिक वेतन अर्जित कर रहे हैं, तो उनका झुकाव भी कम्प्यूटरीकरण की ओर हुआ। दूसरी ओर सरकार ने बैंकों के प्रचालन में कम्प्यूटरीकरण को प्रोत्साहित किया। अब धीरे-धीरे राष्ट्रीयकृत बैंकों में कम्प्यूटरीकरण होता जा रहा है तथा ग्राहक सेवा, उत्पादकता एवं लाभप्रदता में वृद्धि हो रही है।

भारतीय रिज़र्व बैंक भी कम्प्यूटरीकरण के लिये राष्ट्रीयकृत बैंकों को प्रोत्साहित कर रहा है। भारतीय रिज़र्व बैंक एक राष्ट्र-व्यापी सैटेलाईट पर आधारित, सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए नेटवर्क स्थापित कर रहा है, जिससे बैंकों के चैकों का आपसी समाशोधन एवं निधियों का स्थानांतरण अत्यधिक सुविधाजनक एवं द्रुत-तर हो जाएंगे।

सूचना प्रौद्योगिकी के आधार पर बैंकों ने ए. टी. एम. (ATM-AUTOMATED TELLER MACHINES) अनेक महत्वपूर्ण स्थानों पर लगा दिए है, जहां ग्राहक अपनी छोटी राशि के बैंकिंग कार्य संपादन स्वयं कर सकते हैं। इस से स्टाफ़ सदस्यों को बड़े ग्राहकों को निजी तथा निपुण सेवा प्रदान करने का पर्याप्त समय उपलब्ध हो जाएगा। भारतीय बैंक संघ के मुम्बई स्थित स्वधन ए.टी.एम. की श्रृंखला से तो किसी भी भागीदार बैंक के क्रेडिट कार्ड वाले सदस्य बैंकिंग लेन-देन सरलता से कर सकते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी का एक और विशेष लाभ है कि कम्प्यूटरों में अत्यधिक मात्रा में आंकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं। कम्प्यूटर अपनी तीव्र गति, अद्‌भुत स्मर्ण-शक्ति तथा बहुमुखी प्रतिभा के आधार पर आंकड़ों का विवेचन कर के, आवश्यक सूचना प्रदान कर सकते हैं, जिसके आधार पर कार्यपालक महत्वपूर्ण निर्णय तुरंत ले सकते हैं। इस प्रकार की सुविधा बैंकों की निपुणता एवं लाभप्रदता के लिए अत्यंत उपयोगी है।

सूचना प्रौद्योगिकी के आधार पर ही इंटरनेट (INTERNET) की स्थापना हुई है। अपने ग्राहकों को कुछ सीमित सेवाएं देने के लिए, बैंक इंटरनेट का प्रयोग कर रहे हैं तथा दिन-प्रति दिन यह प्रयोग द्रुततर होता जा रहा है।

बैंकों में सूचना प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के लिए सरकार शीघ्र ही सूचना प्रौद्योगिकी विधायक (I.T. BILL) को संसद में स्वीकृति हेतु ला रही है जिस के द्वारा बैंकिंग लेन-देन संबंधी विभिन्न अधिनियमों, विशेषकर परक्राम्य लिखत अधिनियम (NEGOTIABLE INSTRUMENT ACT) में संशोधन किए जा सकें, ताकि इनमें विधि-संबंधित समस्याओं का समाधान हो जाए। सूचना प्रौद्योगिकी विधेयक की स्वीकृति के पश्चात् वर्तमान बैंकिंग में आमूल-चूल परिवर्तन आ जाएगा।

सुस्पष्ट है कि निकट भविष्य में सूचना प्रौद्योगिकी का और अधिक प्रसार तथा प्रयोग होगा। बैंकों को अपने अस्तित्व के हित में नवीनतम सूचना प्रौद्योगिकी को अपनाना होगा। क्या ऐसी स्थिति में राष्ट्रीयकृत बैंक सूचना प्रौद्योगिकी की अवहेलना कर सकते हैं कदापि नहीं। उन के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का आश्रय लेना अनिवार्य ही नहीं, अपरिहार्य भी है।

अत: यह परमावश्यक है कि राष्ट्रीयकृत बैंक अपने दैनिक कार्य संपादन में नवीनतम सूचना प्रौद्योगिकी का अधिकाधिक प्रयोग कर के, अपनी ग्राहक सेवा तथा साख में सुधार लाएं और व्यापार तथा लाभप्रदता में भरसक बढ़ोतरी करें, तभी वे भारतीय बैंकिंग उद्योग में गर्व तथा गौरव से सिर ऊंचा उठा सकेंगे।

सहा० महाप्रबंधक, पंजाब एण्ड सिंध बैंक, बोर्ड विभाग, बैंक हाऊस, 21, राजेन्द्रा प्लेस, नई दिल्ली-110008

भारत प्रेमी हंगरी दूत डॉ गेज़ा : एक आत्मीय भेंट

—प्रदीप कुमार अग्रवाल

भारत में हंगरी सूचना एवं सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक तथा हंगरी दूतावास के सलाहकार डॉ. गेज़ा बैत्लैन्फ़ाल्वि एक विलक्षण व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उनका भारत के प्रति अनुभव और दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक है। अभी पिछले दिनों एक खुशनुमा दोपहर में उनसे मिलने का सुयोग बना। नई दिल्ली के जनपथ पर बने इस भारतप्रेमी विभूति के घने वृक्षों से आच्छादित आवासीय कार्यालय का नाम 'बैकुंठ' है जो हिंदी के प्रति उनके अनुराग को सहज ही व्यक्त करता है।

ऊंचे मेहराबदार दरवाज़ों के बीच मुलाकातियों के लिए बने कक्ष में वे कुछ पल के बाद सादे सुरूचिपूर्ण वस्त्रों में प्रकट होते हैं और मुझे खुद ही अपने हॉलनुमा केबिन तक ले जाते हैं। फ्रैंच कट दाढ़ी, आंखों पर सुनहरा चमकता चश्मा, बेतरतीब बाल और विश्वास से भरी चाल, यही उनका परिचय है। कमरे की दीवार पर एक ओर लगा महात्मा गांधी का लगभग 10 फुट ऊंचा तैल चित्र, दूसरी ओर भारत का नक्शा, कुछ कलात्मक प्रस्तर प्रतिमाएं, 13वीं सदी के एक हंगेरियन कवि की पेंटिंग और पुस्तकों का एक रैक। पाश्चात्य शैलीयुक्त संरचना के इस कक्ष में ही एक कंप्यूटर, वी.सी.आर. और टी.वी. रखा है तो सामने की ओर कागजों-पुस्तकों से भरी उनकी मेज़ है। वहीं एक तरफ रखे सोफ़े पर हम बैठते हैं और शुरूआत होती है मिठाई खाकर मुंह मीठा करने से।

मैं जल्दी ही सवालों की सूची उनके हाथ में थमाते हुए कहता हूं 'तो शुरू करें'। सवालों को एक बार सरसरी पर गहरी निगाह से देखने के बाद वे कहते हैं कि मेरे लिए धाराप्रवाह हिंदी में इनका जवाब देना कठिन होगा, सो थोड़ी अंग्रेजी मिश्रित करने की अनुमति लेते हैं और फिर सिलसिला शुरू हो जाता है। प्रस्तुत है उनसे हुई इस आत्मीय भेंटवार्ता में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों पर उनकी बेबाक़ राय।

प्र. अपनी पृष्ठभूमि के बारे में कुछ बताएंगे ?

उ. मैं 1936 में स्लावाकिया, जो कि अब एक अलग देश है, के तातरा माउंटेंस में पैदा हुआ। बंटवारे की गतिविधियों के चलते हमें अपना स्थान छोड़ना पड़ा और हम मैदानों में चले आए लेकिन मेरे मन में पहाड़ों के लिए आकर्षण हमेशा बना रहा। हिमालय मेरा लक्ष्य था और बौद्ध मठ ठिकाना। इसलिए, मैने बुडापेस्ट के साउथ एशिया विभाग में इंडोलॉजी पढ़ी। सबने कहा पागलपन है पर मैं नहीं माना।

1956 में मैंने संस्कृत सीखनी शुरू की और बाद में हिंदी सीखी। योग, बुद्धिज्म और हिमालय के प्रति मेरा आकर्षण भारत से जुड़ाव के प्रमुख कारण रहे। हमारे यहां करीब 3 लाख जिप्सीज़ (डोम) हैं जो 13वीं सदी में भारत से गए थे। उनकी भाषा को रोमानी कहते हैं जो एक भारतीय बोली है। मैंने इसी में पी.एच.डी. किया है। इंडोलॉजी में कोई जॉब नहीं थी। मैंने तिब्बती सीखनी शुरू की और फिर अपना कैरियर मंगोलिया से शुरू किया। वहीं तिब्बती-बुद्धिस्ट साहित्य पढ़ा। मैने वहां इस पर दो पुस्तकें भी लिखीं।

प्र. भारत में हो रहे सांस्कृतिक बदलाव के बारे में आपका क्या नज़रिया है ?

उ. हम भारत की पृष्ठभूमि, आध्यात्म, दर्शन और साहित्य से बहुत प्रभावित थे । नई संस्कृति ने लोगों में बदलाव किया है। खास तौर से, शहरों के लोग काफ़ी बदल गए हैं पर गांवों में संस्कृति की सुगंध अभी बाकी है। यह एक बड़ी चुनौती है जिसका सामना करना ही पड़ेगा और खराब लगने वाली चीजों को अच्छी में बदलने की कोशिश करनी होगी।

भारत व यूरोप की संस्कृति में व्यावहारिकता का अंतर है, इसे ध्यान में रखना होगा। भारत प्राचीन सभ्यता व संस्कृतियों का मिश्रण है जो हिंदू संस्कृति का परिचायक है। इसे रचनात्मक रूप से अच्छे के लिए प्रयोग करें। इससे घबराना नहीं चाहिए, बस इसके लिए विवेकशीलता चाहिए। लोगों को अधिक जागरूक व व्यावहारिक होना चाहिए तथा सांस्कृतिक-शैक्षणिक सुधार होना चाहिए। आधुनिकता से डरें नहीं बल्कि इसका सही उपयोग बेहतरी के लिए करें।

प्र. साहित्य में हिंदी भाषा की स्थिति के बारे में आपका क्या विचार है ?

उ. 1970 से मैंने भारत में 30 साल देखे हैं (बीच में मेरे लिए चाय बनाते हुए), मैंने देखा कि हिंदी, बांगला, मराठी और कुछ दक्षिणी साहित्य आगे जा रहा है। खास तौर पर वो, जो दुनिया के सामने भारत की सही तस्वीर रखना चाहते हैं, उनके साहित्य में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। उनमें हिंदी सबसे प्रमुख है। इसका निश्चित रूप से बहुत विकास हुआ है। लोगों को इस बारे में खुले दिमाग से सोचना चाहिए।

प्र. राजभाषा के रूप में भारत में हिंदी की स्थिति के बारे में क्या सोचते हैं ?

उ. माफ़ कीजिए, मैं राजभाषाओं का दुश्मन हूं। किसी भी भाषा को लेकर पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए। हिंदी की व्यापकता को बढ़ाने के लिए इसे लेटिन (रोमन) अक्षरों में लिखना चाहिए। मुझे याद आता है कि हिटलर को सत्ता मिलने पर उसने पुराने जर्मन अक्षरों को छोड़कर नए अक्षर अपनाए। वो महान राष्ट्रवादी था। इससे जर्मन का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप बना।

रूस में भी ऐसी ही कोशिश हुई थी लेकिन स्टालिन ने लेनिन की ऐसी कोशिश को रोककर रूस का नुकसान किया। भाषा एक-दूसरे को समझने का सबसे आसान जरिया है। फिल्मों ने हिंदी का बहुत प्रचार किया है। थोपने से विरोध होता है। अक्षर बदलने से हिंदी को फैलाने में बहुत ममद मिलेगी।

प्र. एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के विकास पर आपकी क्या राय है ?

उ. बहुराष्ट्रीय कंपनियां भाषा को एक औजार मानती हैं। उनका किसी भाषा या संस्कृति से कोई खास जुड़ाव नहीं होता। अत: यह समझना कि वे भाषा का प्रचार करती हैं, क्षेत्र के अनुसार सीमित होता है। रूसियों और फ्रैंच वालों ने बहुत कोशिश की पर उनकी भाषा नहीं फैली। वे जर्मनी में किसी भी अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में अंग्रेजी बोलते हैं।

दुनियां में चीनी व हिंदी बोलने वाले ज्यादा होते हुए भी अपने देश में ही यह भाषाएं बोलते हैं। बाहर के देशों में जाकर उनका यह लगाव समय के साथ लुप्त हो जाता है। दूसरे देशों में बसने वाली पहली पीढ़ी अपनी भाषा-संस्कृति से भले ही जुड़ी हो पर दूसरी पीढ़ी शिक्षा व संस्कृति में उनसे अलग होकर अंग्रेजी सीखती है। इससे भाषा का फ़ैलाव रुकता है। हिंदी की भी यही स्थिति है।

प्र. हिंदी और हंगेरियन भाषा में साहित्य के परस्पर आदान-प्रदान की क्या स्थिति है ?

उ. हिंदी से हंगेरियन में ज्यादा पुस्तकें अनूदित हुई हैं जबकि हंगेरियन से हिंदी में कम। इन्हें हमारे अपने पब्लिशर्स छापते हैं। उनका ध्यान इस बात पर होता है कि पुस्तक रूचिकर हो और उसका साहित्यिक मूल्य हो। हमारे यहां गिरीश कर्नाड, अज्ञेय, अशोक वाजपेई की कविताओं, प्रेमचंद की कई पुस्तकों, कृश्न चन्दर, ग़ालिब, यशपाल, अमृता प्रीतम आदि की कृतियों के अनुवाद हुए हैं। (इस बीच चाय का एक दौर और चलता है)।

अन्य भारतीय लेखकों-बांगला, उर्दू, अंग्रेजी आदि से भी हंगेरियन में अनुवाद हुए हैं जिनमें टैगोर, राजगोपालाचारी, खुशवंत सिंह, कमला मार्कण्डेय, नारायणन आदि शामिल हैं। हंगरी का भी थोड़ा साहित्य हिंदी में आया है जिसमें प्रमुख रूप से कुछ कविताएं व लघु कहानियां शामिल हैं।

प्र. आपके देश में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के लिए क्या व्यवस्थाएं उपलब्ध हैं ?

उ. वैसे कोई बड़ी नियमित व्यवस्था तो नहीं है पर हंगरी दूतावास में हिंदी का कोर्स है। बाकी साहित्य है—शब्दकोश हैं। हंगरी में इंडोलॉजी का अलग से विभाग है जहां सन् 1873 से संस्कृत के अध्ययन की व्यवस्था है। यहां 1956 से हिंदी सिखाने की भी व्यवस्था की गई है। मैं हिंदी का पहला विद्यार्थी था। मारिया नेज्यैशी वहां एक सुयोग्य अध्यापिका हैं। छात्र एक वर्ष में हिंदी में पारंगत हो जाते हैं । बुडापेस्ट में हंगरी के भारतीय दूतावास में भी वही पढ़ाती हैं। उनके काफी छात्र हैं।

प्र. भारतीयों के लिए भाषा के बारे में कोई खास संदेश, जो आप महसूस करते हों ?

उ. भाषिक सौहार्दता को बढ़ाने के लिए सभी को अधिक से अधिक भाषाएं सीखनी चाहिएं। हिंदी भारत में बहुत उपयोगी भाषा है पर इसे हिन्दुस्तानी रूप में इस्तेमाल किया जाए, शुद्ध हिंदी न हो । इसका उपयोग राजनैतिक उद्देश्यों के लिए नहीं होना चाहिए बल्कि एक-दूसरे को परस्पर समझने के लिए होना चाहिए।

मेरी राय में, 21वीं सदी का विश्व एक-दूसरे के शोषण का नहीं बल्कि एक-दूसरे को समझने का समय होना चाहिए। हिंदी उपयोगी है पर इसे अन्य भाषाओं के साथ सीखें; जैसे— हंगरी के सीमावर्ती राज्यों के लोग 2-3 भाषाएं सीखते हैं जो उनके अपने हित में काम आती हैं। जो लोग अधिक भाषाएं सीखते हैं, वे देश और संस्कृति को ज्यादा समझते हैं और उनका दृष्टिकोण अधिक व्यापक होता है। इसीलिए, उनका कार्य भी व्यापक और असरदार होता है।

कई महत्वपूर्ण पुस्तकों के लेखक और विशिष्ट भारतप्रेमी डॉ. गेज़ा से इस मुलाकात के आखिरी सवाल के संदर्भ में उनके द्वारा दी गई दलील आज के भारतीय परिदृश्य में बेहद महत्वपूर्ण है। संभवत: राष्ट्रीय एकता के लिए भी यह सर्वाधिक सशक्त आधार है जो भारत के संबंध में उनके गहन चिंतन का परिचायक भी है।

निकलते समय मैं उनका धन्यवाद करना नहीं भूलता और वे सौजन्यता की प्रतिमूर्ति बन जल्द मिलने का वादा लेकर मुझे द्वार तक छोड़ने आते हैं। शायद यही अपनापन भारतीय संस्कृति की वह मूल आत्मा है जो किसी को भी अपनी आत्मीयता के दायरे में अनायास ले लेती है और भेद-भाव के बंधनों से ऊपर शायद यही जीवन का सच्चा स्वरूप भी है।

सहायक महाप्रबंधक (हिन्दी), भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, उत्तरी अंचल,नई दिल्ली

भारतीय कृषि में जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान

—डॉ० मुकुल चंद पांडेय,

बढ़ती हुई जनसंख्या के भोजन की मांग की पूर्ति के लिए खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाना कृषि वैज्ञानिकों के लिए महत्वपूर्ण चुनौती है। आज के परिवेश में इसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि तथा खाद्यान्न दर का अनुपात दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। अतीत में हुई हरित क्रांति की छवि अब धीरे-धीरे धुंधली होती जा रही है क्योंकि गेहूं तथा चावल के फसलोत्पादन में स्थिरता आ गई है। पचास-साठ के दशक में हुई हरित क्रांति तथा आज के परिवेश में जमीन आसमान का अंतर है। उस समय जनसंख्या वृद्धि दर कम तथा खेती योग्य भूमि अधिक थी, साथ ही प्राकृतिक संपदा की भी प्रचुरता थी। परंतु आज हमें इन्हीं सीमित संसाधनों का प्रयोग करते हुए फसलोत्पादन को तेज गति से बढ़ाना है या ऐसा भी कहा जा सकता है कि आज हमें एक दूसरी हरित क्रांति की आवश्यकता है। इस भावी क्रांति में पोदप जैव-प्रौद्योगिकी का विशेष अग्रणीय स्थान माना जा रहा है। उत्पत्ति के आधार पर यह विज्ञान अपेक्षाकृत नया है परंतु इसमें अब तक उपलब्ध सभी नई खोजों तथा तकनीकों का समावेश किया गया है। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के संगम से बना यह विज्ञान भावी चुनौतियों का सामना करने में सक्षम है। भावी कृषि क्षेत्र को इस अधुनातन विज्ञान से बहुत आशाएं और अपेक्षाएं हैं।

पादप जैव प्रौद्योगिकी के कृषि एवं फसल सुधार के कार्यक्रम को तीन भागों में बांटा जा सकता है।

1-ऊतक संवर्धन (टिशूकल्चर)

जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान में इस्तेमाल होने वाली यह तकनीक काफी सूक्ष्म और विशिष्ट है। इस तकनीक में ऊतकों को विभिन्न कृत्रिम पोषक माध्यमों पर नियंत्रित वातावरण में संवर्धित तथा उप संवर्धित करते हुए नवजात पौधों में विकसित किया जाता है।

(क) समक्लोनल विविधता

ऊतक संवर्धन द्वारा पौधों को कायिक विधि द्वारा प्रगुणित किया जाता हे, इसके फलस्वरूप कोशिका विभाजन द्वारा एक कोशिकाओं का पुंज बनता है जिसे कैलस कहा जाता है। इस कैलस द्वारा विकसित पौधे प्राय: कुछ आनुवंशिक विविधताएं दर्शाते हैं, इसे समक्लोनल विविधता कहते हैं। पादप अभिजनन के लिए यह एक नया व अच्छा माध्यम है।

राष्ट्रीय जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली द्वारा विकसित 'राई' की किस्म 'पूसा जय किसान' इसी विधि द्वारा विकसित की गई है।

(ख) फसलों की जंगली प्रजातियों का उन्नत प्रजातियों द्वारा कायिक संकरण :

प्राय: फसलों की जंगली प्रजातियों में बहुत से जैविक तथा अजैविक रोधकता स्वत: ही पाई जाती है क्योंकि यह गुण सदियों से प्रकृति द्वारा चयनित किए जाते हैं जिससे इन पौधों का अस्तित्व बना रहा। इन प्रजातियों का प्रयोग विशिष्ट आर्थिक गुण जैसे कीटरोधकता, रोगरोधकता, लवण तथा क्षार के प्रति सहनशील, स्वाद, रंग, गंध आदि गुणों की जंगली पौधों में स्थानांतरित करने के लिए किया जाता है।

(ग) सूक्ष्म प्रवर्धन (माइक्रो प्रापेगेशन) :

इस विधि का प्रयोग अच्छे तथा उत्तम गुणों वाले पौधों को तीव्र गति से प्रगणित करने के लिए किया जाता है। चूंकि पौधे नियंत्रित वातावरण में उगाए जाते हैं इसलिए उन पर बाहरी वातावरण का प्रभाव नगण्य होता है जिससे इन्हें वर्ष भर उगाना संभव हो पाता है। इसका प्रयोग विभिन्न उद्यान, शोभाकारी फसलों तथा सस्य फसलों से व्यवसायिक रूप से प्रणुणित करने के लिए किया जा रहा है। पपीता तथा आलू का सूक्षम प्रवर्धन जैव प्रौद्योगिकी का अच्छा उदाहरण है।

2—आण्विक प्रजनन (मोलिकुलर ब्रीडिंग) :

पादप अभिजनन में संस्करण के पश्चात उत्पन्न विभिन्न वंशक्रमों में से वांछित उत्तम वंशक्रमों का चयन दृश्य रूप से या चिह्नक द्वारा किया जाता है तथा जिन्हें उनके आनुवंशिक गुणों से जोड़ा जाता है। इस विधि द्वारा चयनित वंशक्रमों में समानता का नहीं होना यह दर्शाता है कि दृश्य रूप के लिए आनुवंशिक कारकों के साथ साथ कुछ उपार्जित कारक भी होते हैं जो न केवल आसान है अपितु उत्कृष्ट भी हैं जिनमें वंशक्रमों का चयन एकदम सटीक होता है। इनमें मुख्य हैं आर. एफ. एल. पी. तथा आर. ए. पी. डी.।

3—पुनर्योजित डी. एन. ए. तकनीक (रिकाम्बिनेंट डी. एन. ए. टेक्नीक) :

पुनर्योजित डी. एन. ए. तकनीक जीन के स्थनान्तरण की एक उत्कृष्ट और चमत्कारी तकनीक है जिसमें किसी भी प्राणी के विशिष्ट गुणों वाले जीन को वांछित पौधों में डाला जा सकता है। इस प्रकार के वांछित पौधे को जिसमें बाहर का जीन डाला गया है पराजीनी (ट्रांसजीनिक) कहते हैं, उदाहरणार्थ रोगरोधकता, कीटरोधकता, विषाणुरोधकता आदि गुणों को भी किसी प्राणी से निकालकर मनोवांछित पौधे में डाला जा सकता है या कुछ हेर-फेर द्वारा कृत्रिमजीन भी बनाया जा सकता है। पराजीनी पौधों द्वारा फसल सुधार की विविध संभावनाएं सामने आती हैं तथा विश्व भर में कई पराजीवी किस्में विकसित की जा चुकी हैं।

आनुवंशिक आभियांत्रिकी (जेनेटिक इंजीनियरिंग) :

मिट्टी में पाए जाने वाले जीवाणु बैसिलस युरिजैंसिस द्वारा अपने जीवनकाल में एक विशेष प्रोटीन का निर्माण किया जाता है जिसे डेलटा इन्डोटाक्सीन कहते हैं। प्रोटीन जब एक विशेष वर्ग के कीटों (तना तथा फली छेदक) की आहार नाल में पहुचता है तो वहां क्षारीय

वातावरण व एंजाइम प्रोटिएज की सहायता से विखंडित हो इन कीटों के लिए विषाक्त बन जाता है फलस्वरूप कीट मर जाता है। यह विशिष्ट कीटनाशी केवल विशेष प्रकार के कीटों को मारता है तथा प्राणियों पर कोई दुष्परिणाम नहीं डालता,, इसलिए यह पर्यावरण की दृष्टि से काफी सुरक्षित है। इसी प्रोटीन के बहुत से संरूपण (फारमुलेशन) आजकल बाजार में उपलब्ध हैं जिनका प्रयोग कृषकों द्वारा फसल सुरक्षा में किया जा रहा है।

जैव प्रौद्योगिकी का जनस्वास्थ्य पर परोक्ष प्रभाव :

आर्थिक महत्व वाले बहुत से जीन अभी उपलब्ध नहीं हैं तथा इसकी खोज अभी जारी है परन्तु जो जीन अभी उपलब्ध हैं उनका उचित प्रयोग फसलों के सुधार में किया जा रहा है। यदाकदा सही प्रजाति के स्थान पर उल्टी रोग ग्रस्त तथा विषाक्त पोधों के भी तैयार होने के खतरे बने रहते हैं।

जैव प्रौद्योगिकी को अभी प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है जिनसे एक जनचेतना जागृत हो ताकि अधिक से अधिक लोग इस दिशा में सोचें विचारें ताकि यह विज्ञान जन-जन का विज्ञान बने, जिससे उन्हें जैव प्रौद्योगिकी जनित उत्पादों को अपनाने में कोई हिचकिचाहट न हो।

फिर भी जैव प्रौद्योगिकी विज्ञान की अनूठी उपलब्धि है जिस पर गर्व किया जाना चाहिए क्योंकि अब कल्पना शक्ति के अनुरूप मनचाहे वांछित पौधों के विकास की असीम संभावनाएं पैदा हो गई हैं। यह भी विचारणीय है कि अत्यधिक जीनियागरी से मानव स्वास्थ्य पर कुप्रभाव न पड़ सके।

353, त्रिवेणी नगर, लखनऊ—226020

भारतीय कृषि की मेरूदण्ड महिला कृषक

—रेनू चौहान एवं सतीश आहूजा

भारतीय कृषक स्वयं न खाकर दूसरों को खिलाता है। स्वयं न पहनकर संसार को वस्त्र देता है, उसके अनुपम त्याग की समानता संसार की कोई वस्तु नहीं कर सकती । भारतीय किसान की आकृति से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कोई वीतराग संन्यासी हो, जिसे न मान का हर्ष है और न अपमान का खेद, न फटे कपड़े पहनने का दु:ख और न कभी अच्छे वस्त्र पहनने की प्रसन्नता, जिसे न दु:ख में दु:ख है और न सुख की कामना । साधना करते हुए जिसके हृदय में कभी सिद्धि की इच्छा उत्पन्न नहीं होती। वह कर्मयोगी है जो फल प्राप्ति की इच्छा से रहित होकर कर्म करने में तल्लीन रहता है। इससे भी कहीं अधिक त्याग की मूर्ति भारतीय कृषक महिला की है जो अपने घर-गृहस्थी को संवारने के साथ-साथ अपने खेत खलिहानों को लहलहराने में भी कोई कसर नहीं छोड़ती। ग्रामीण परिवेश में कोई भी कार्य क्षेत्र अछूता नहीं जहां नारी की उपस्थिति एवं सहभागिता न हो।

पुरुष कृषि व्यवसाय के जो भी काम करते हैं उनमें स्त्रियां उनके साथ ही होती हैं। पुरुष हल जोतता है, तो महिला पीछे-पीछे बीज छिड़कती जाती है या मिट्टी के ढेले फोड़कर खेत समतल कर रही होती है। पुरुष खेत खोदता है तो महिला उसके लिए भोजन तैयार करती है। अकेला पुरुष कृषि कार्य करता हुआ कम ही दिखाई देता है जबकि महिलाएं बिना पुरुष के साथ भी खेतों में काम करती नज़र आ जाती हैं। हल जोतने के अलावा कृषि के समस्त कार्य जैसे-ढेले फोड़ना, खेत समतल करना, गोड़ना, निराई कटाई तथा मढ़ाई प्राय: महिलाएं ही करती हैं। कृषि, पशुपालन, अनाज भण्डारण व अन्य संबंधित कार्यों में महिलाओं का ही एकाधिकार है।

वास्तविकता यह है कि कृषि का प्रारम्भ ही महिलाओं द्वारा हुआ है। आरम्भ में जब पुरुष भोजन की तलाश में शिकार पर जाया करते थे तो महिलाएं घर के आस-पास से बीज एकत्रित करती थीं। खेती, खद्यान, चारा एवं जलावन जैसे उपयुक्त पौधों के बीजों को ज़मीन में बो दिया करती थीं । इस प्रकार खेती का प्रारम्भ हुआ तथा खेती की कला और विज्ञान का जन्म हुआ। भोजन आपूर्ति में भी महिलाओं का योगदान 80 प्रतिशत होता था। वे शाक सब्जी, कन्दमूल, फल आदि एकत्रित करके लाती थीं। शिकार से पुरुष केवल 20 प्रतिशत का ही योगदान किया करते थे। यही नहीं, सदियों से महिलाएं आनुवांशिक मूलों की धरोहर की परिरक्षिका रही हैं। इन्होंने सतर्कता एवं कुशलता से अनमोल आनुवांशिक मूलों के संग्रहण एवं संरक्षण का कार्य किया है। वे अच्छे बीजों का चयन कर उन्हें अगली फसल उगाने के लिए संभाल कर रखती थीं ताकि बीज के अभाव में फसल उत्पादन चक्र शिथिल न पड़ जाए। स्टैनले (1982) ने "वूमेन टैक्नोलॉजी एण्ड इनोवेशन" नामक पुस्तक में ज़िक्र किया है कि गेहूं, चावल, मक्का, बाजरा, ज्वार, जई एवं राई जैसे महत्वपूर्ण खाद्यों को सर्वप्रथम महिलाओं ने ही कृषि के लिए अपनाया।

आज भी भारतीय कृषि की मेरूदण्ड महिलाएं ही हैं। वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक कार्य करती हैं तथा अपने परिवार कल्याण और गृहस्थी को सुचारू रूप से चलाने की पूरी जिम्मेदारी का निर्वहन करती हैं। हाल ही में कृषि के विकास में महिलाओं के योगदान को सिद्ध किया गया है और इसकी पुष्टि भी की गई है। भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की महत्वपूर्ण व उत्पादनशील भूमिका को स्वीकारा गया है। भारत में आर्थिक रूप से सक्रिय सभी महिलाओं का लगभग 84 प्रतिशत कृषि व उससे संबंधित कार्यों में रत हैं। लगभग 40.3 करोड़ की आबादी में से 9 करोड़ महिलाएं श्रमिक हैं तथा अधिकांशत: ग्रामीण क्षेत्रों में लगी हुई हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लगी महिलाओं में से 87 प्रतिशत खेतिहर मजदूर हैं। आर्थिक रूप से सक्रिय महिलाओं के 5 में से चार भाग को कृषि में रोज़गार मिलता है जो कृषि श्रम बल का एक तिहाई भाग तथा स्वरोज़गार में लगे किसानों का 48 प्रतिशत है।

डा. लैम्पी के अनुसार संसार की 40 प्रतिशत खेती का पूरा प्रबंध महिलाओं द्वारा किया जाता है। एशिया में कुल महिला श्रमिक शक्ति में लगभग 56 प्रतिशत कृषि संबंधित कार्यों में रत हैं। कृषि में महिला श्रमिक शक्ति का प्रतिशत नेपाल, भारत, चीन, थाइलैंड, वियतनाम तथा मयांमार में क्रमश: 96.8, 78.1, 78.0, 76.3, 72.6 तथा 63.0 प्रतिशत है। पुरुषों की जनसंख्या में गैर कृषि रोज़गार की ओर वृद्धि हो रही है जबकि महिलाएं, कृषि कार्य तथा कृषि प्रबन्ध की ओर अग्रसर हो रही हैं। इसलिए, यह कहना उचित होगा कि विकासशील देशों में कृषि के कार्यों से जुड़ी कृषक एक महिला है।

यद्यपि भारत में कृषि में महिलाओं की भागीदारी क्षेत्र विशेष पर निर्भर करती है, बावजूद इसके निम्नलिखित सारणी-1 में दिए गए आंकड़ों से पता चलता है कि 45 प्रतिशत महिलाएं दिन का अधिकतर भाग बोआई से पूर्व होने वाले कृषि कार्यों में लगाती हैं, जबकि 79 प्रतिशत महिलाएं खड़ी फसल में काम करने में और 78 प्रतिशत महिलाएं कटाई के बाद होने वाले कृषि कार्यों में लगाती हैं। निर्धन महिलाएं अवकाश के दिनों में बोआई से पूर्व होने वाले कृषि कार्यों में खड़ी फसल में 3.6 प्रतिशत तथा 1.8 प्रतिशत कटाई के बाद होने वाले कार्यों में लगाती हैं।

सारणी-1 महिलाओं द्वारा फसलोत्पादन किए गए समय का विवरण

समय देना	उत्पादन क्रियाओं में भाग लेना		
	बुआई से पूर्व	खड़ी फसल में	कटाई के बाद
अधिकतर हिस्सा	45.6	69.1	78.2
कुछ हिस्सा दिन में	16.4	25.5	14.6
जब जरूरत पड़े	34.6	1.8	5.5
अवकाश के दिनों में कार्य	3.6	3.6	1.8

स्रोत : सिंह (1990) खेती 44 अंक—पृष्ठ 17

सारणी-2 में दिए गए आंकड़ों से पता चलता है कि कृषि कार्य में महिलाओं की भागीदारी बोआई से कुछ दिनों पहले से लेकर बोआई के समय तक महत्वपूर्ण होती है। इस समय के कार्यों में केवल बीज उपचार के कार्य को छोड़कर शेष सभी कार्यों की 75 प्रतिशत भागीदारी होती है।

निर्माण तथा पानी एवं ईधन की आपूर्ति आदि सम्मिलित है । ये सभी क्रियाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। भाटी एवं सिंह (1988) के अध्ययन के अनुसार हिमाचल प्रदेश में फसल का 37 प्रतिशत, निराई-गुड़ाई एवं सिंचाई का 50 प्रतिशत और पुशपालन का 69 प्रतिशत कार्य महिलाएं करती हैं। खेती के कुल कार्य का 61 प्रतिशत कार्य महिलाएं करती हैं। शशिकला (1990) ने बरानी एवं सिंचित खेती की विभिन्न क्रियाओं जैसे खाद डालना (100 एवं 90), बोआई करना (88.75 एवं 97.5), प्रतिरोपण (78.5 एवं 62.5), निराई--गुड़ाई (98.75 एवं 100), फसल कटाई (100 एवं 98.75), संसाधन (96.25 एवं 96.25), भण्डारण (51.25 एवं 62.5), मजदूरों में व्यवस्था (62.5 एवं 95.0) आदि में महिलाओं की भागीदारी (प्रतिशत) पाई । इन क्षेत्रों में पशुपालन की क्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी क्रमशः जानवरों को चारा देना (73.75 एवं 81.25) पशुपालन की सफाई करना (66.25 एवं 63.75) तथा दूध दुहना (67.5 एवं 72.5) रहती है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं धान प्रतिरोपण में 16 प्रतिशत, धान और गेहूं की निराई-गुड़ाई में 8 प्रतिशत, बाजरा कटाई में 24 प्रतिशत और कपास बिनाई में 37 प्रतिशत अधिक कार्यदक्ष हैं। धान के प्रतिरोपण में 75 प्रतिशत, निराई-गुड़ाई में 78 प्रतिशत तथा कटाई में 60 प्रतिशत श्रमिक महिलाएं होती हैं। ओसाई, कटाई, भूसी निकालना, सफाई एवं भंडारण करने का सारा कार्य महिलाएं ही करती हैं।

शुष्क क्षेत्र में फल एवं सब्जी उत्पादन के विभिन्न क्रिया-कलापों, जैसे पौधशाला में पौधे तैयार करना, खेत में पौध लगाना, लगाए गए पौधों की देख-रेख एवं उनमें कृषि कार्य करना, फलों एवं सब्जियों की जंगली जानवरों व चिड़ियों से रखवाली करना, फलों एवं सब्जियों की तोड़ाई एवं छंटाई करने आदि में महिलाओं का बड़ा योगदान है। इसी प्रकार स्थानीय बाजारों में फल एवं सब्जी विपणन तथा घरेलू एवं कुटीर उद्योग के स्तर पर परीक्षण में महिलाओं का पूर्ण योगदान रहता है । घरेलू स्तर पर परिरक्षण के अतिरिक्त परीक्षण से जुड़े कुटीर उद्योगों के विभिन्न कार्यों में महिलाओं का लगभग 75 प्रतिशत योगदान है। कुटीर उद्योगों में अचार, मुरब्बा, चटनी इत्यादि तैयार करने में लगी शिक्षित महिलाओं के अतिरिक्त अन्य महिलाएं फलों एवं सब्जियों की धुलाई, कटाई, मसाला तैयार करना, गोदाई करना, आदि कार्य कर लेती हैं। बड़े उद्योगों में अधिकतर कार्य मशीनों द्वारा किया जाता है, लेकिन यहां भी महिलाएं अनेक कार्य जैसे—लेबल लगाना, पैकिंग करना आदि करती हें। राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रों में सुखाए जाने वाले फलों एवं सब्जियों में बोरड़ी, सांगरी, बेर, कुमट, कचरी, पंचकुटा, ककड़ी, पालक इत्यादि हैं जो ग्रामीण महिलाओं द्वारा ही सुखाई जाती हैं। केरल में 80 प्रतिशत से अधिक महिलाएं धान की बोआई, गुड़ाई, भण्डारण एवं संसाधन कार्य देखती हैं तथा 90 प्रतिशत से अधिक महिलाएं अनाज के भण्डारण एवं विपणन संबंधी निर्णय लेने में भाग लेती हैं। आदिवासी महिलाएं भी कृषि जगत में अग्रणी रही हैं। मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले की आदिवासी महिलाएं खेती का 75 प्रतिशत और पशुपालन का 68 प्रतिशत कार्य करती हैं।

दुख व क्षोभ की बात यह है कि कृषि मे पुरुषों की अपेक्षा अधिक परिश्रम व श्रमदान करने के बावजूद महिलाओं को आधी अथवा एक तिहाई ही मजदूरी दी जाती है। वैंकटरमानी ने (1986) में बताया कि तमिलनाडू में जहां पुरुषों को 13.00 रुपया प्रतिदिन दिया जाता था वहां

महिलाओं को केवल 6.00 रुपए। इस पक्षपात का महिलाओं की स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ा। कृषि जगत की प्रगति ने दहेज प्रथा को भी बढ़ावा दिया। फलस्वरूप नारी शिशु को लोग अभिशाप समझने लगे। वे आर्थिक संसाधन तो हैं परन्तु परोक्ष रूप से। उनका उत्पादन संसाधनों पर सीमित नियंत्रण होता है। धन-दौलत, क्रय-विक्रय, ज़मीन जायदाद को लेकर अथवा अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय लेने का अधिकार उन्हें नहीं के बराबर है। तकनीकी जानकारी के अभाव में अपनी राय देने में वे सक्षम नहीं होती हैं। उन की संभावित कार्यक्षमता का भरपूर उपयोग उत्पादक कारकों व प्रशिक्षण की कमी तथा पुरानी तकनीकी के कारण भी नहीं हो पाता है। वास्तव में समाज और रीति रिवाजों से सुदृढ़, लिंग भेद बहुत व्यापक है तथा सामाजिक व आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध होता है।

स्वामी विवेकानन्द जी ने बिल्कुल सही कहा है कि जिस राष्ट्र की महिलाएं अशिक्षित व पिछड़ी हों, वह राष्ट्र कभी प्रगति नहीं कर सकता। भारत में आज भी अधिकतर ग्रामीण महिलाएं अनपढ़ हैं तथा विश्व के अन्य भागों तथा संचार के माध्यम से प्राप्त होने वाली जानकारियों से वंचित हैं। शिक्षण-प्रशिक्षण का अभाव ही इनके पिछड़ने का मौलिक कारण है। परंतु अब हमें इस स्थिति को बदलना होगा।

पं. जवाहर लाल नेहरू जी ने कहा था कि महिलाओं की प्रगति से समाज प्रगति करता है और इससे देश प्रगति करता है। देश को जगाना हो तो औरत को जगाओ। वह उठ खड़ी होगी तो घर जागेगा, गांव जागेगा और पूरा देश जाग जाएगा। नारी पढ़ेगी तो पूरा घर पढ़ेगा, समाज पढ़ेगा। समाज के बहुमुखी विकास के लिए महिलाओं के उच्च शिक्षण-प्रशिक्षण, सामाजिक व आर्थिक सशक्तिकरण तथा उद्यमता विकास पर विशेष बल देना होगा। लैंगिक पक्षपात, दहेज प्रथा, नारी शोषण, नारी शिशु हत्या जैसी कुरीतियों को समाज से समाप्त करना होगा। कृषि संचालन में महिलाओं को उनका अधिकार लौटा कर उनके स्थान को पुनः प्रतिष्ठित करना होगा। देश की प्रगति व समृद्धि के लिए अन्नपूर्णा का वरदान आवश्यक है। पौराणिक धर्मग्रन्थ भी यही शिक्षा देते हैं कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।"

इसका अर्थ यह भी कदापि नहीं कि हमें केवल नारी की पूजा ही करते रहना है बल्कि महिला को पुरुषों के साथ मुख्य धारा में ला कर उन्हें मशीनों व नए औजारों को चलाने, उनके रखरखाव आदि से संबंधित प्रशिक्षण की पूरी भागदारी देनी होगी। उन्हें कृषि वानिकी के विभिन्न विषयों जैसे चारा व ईंधन इकट्ठा करना, गोंद, शहद, लाख व तेंदू पत्ती इकट्ठी करना, नर्सरी की तैयारी, पौध रोपण, नीम की पतियों का प्रयोग, नीम व महुए के बीजों को एकत्रित कर तेल निकालना, परम्परागत व गैर परम्परागत फलों को तोड़ने की तकनीक आदि पर प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

वैज्ञानिकों व तकनीशियनों को इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि औजारों की नई तकनीकों का विकास करते समय उनके डिजायन व बनावट इस प्रकार की हो कि महिलाएं भी उसे आसानी से चला सकें क्योंकि ऐसा देखने में आया है कि महिलाएं सामान्यतः वहीं पर अधिक काम कर रही हैं जहां मशीनों का कम अथवा बिल्कुल प्रयोग नहीं किया जा रहा है। कृषि में

नवीनतम तकनीकों के अपनाने से महिलाओं की सामर्थ्य शक्ति बढ़ने से न केवल उत्पादन में ही वृद्धि होगी अपितु श्रम बल व समय की भी बचत होगी। महिलाओं को प्रशिक्षण दिया जाना एक विवेकपूर्ण व उपयुक्त कदम है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण सहकारी समितियों की सदस्यता में उन्हें बढ़ावा देना, प्रौद्योगिकी व विपणन में उनकी पहुंच होना, सैद्धांतिक प्रशिक्षण व प्रदर्शन व्यवस्था में उन्हें शामिल करना, व्यवहारिक अनुभवों व नए कौशलों से सम्पूरित करना आदि शामिल है जो महिलाओं के साथ-साथ भारतीय कृषि को भी विकास के पथ पर आगे बढाएंगे।

अनुभवों से पता चलता है कि कृषि में अधिक निवेश से ही उत्पादन में बढ़ोत्तरी का हो जाना ही सब कुछ नहीं है। पुरुषोचित व्यवस्था में कृषि संस्कृति ने प्राकृतिक साधनों का शोषण ही किया है। फलस्वरूप पैदावार में गिरावट, पेयजल एवं सिंचाई की समस्या, जल के स्तर व गुणवत्ता में गिरावट, जलमग्नता, मृदा में लवणता, अत्यधिक रसायनों आदि के प्रयोग से मृदा समस्या आदि कई दुष्परिणाम उभर कर आए हैं।

परम्परागत तरीकों से सूझ-बूझ व विवेक से पूर्णरूप से जैविक खेती जैसे कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, हरी खाद, जैव उर्वरकों इत्यादि द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए भरपूर उत्पादन लेना महिलाओं द्वारा ही संभव है। जब विश्व फुकोवका की प्राकृतिक खेती के सिद्धान्तों से प्रभावित हो कर उन्हें अपना रहा है तो क्यों न हम अपनी कृषि पद्धति की धरोहर को पुनः प्रचलित करें, जिसकी नींव महिलाओं ने कई शताब्दी पूर्व रखी थी, जिसे देख आश्चर्य-चकित ए. वायलंकर ने कहा था कि उन्होंने ऐसी आदर्श व परिपूर्ण खेती की शैली और कहीं नहीं देखी ।

महिलाओं द्वारा विकसित कृषि के मूल सिद्धान्तों को आधुनिक प्रणाली में स्थान देकर ही हम अपनी कृषि व्यवस्था को टिकाऊ बना पाएंगे तथा साथ ही महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक विकास में सक्रिय भागीदारी पुनः सुनिश्चित कर सकेंगे। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि नारी को पूर्ण मानवीय अधिकार मिलें ताकि अन्नपूर्णा व भारतीय कृषि की मेरूदण्ड, अज्ञान, अभाव तथा असमानता की दुनियां से बाहर आ सके।

विस्तार निदेशालय (कृषि एवं सहकारिता विभाग) कृषि विस्तार भवन, नई दिल्ली-110012

फिर बढ़ रहा है टी. बी. का प्रकोप

—विनीता सिंघल

पिछले कुछ दशकों से दो रोग, एड्स और कैंसर ही विशेष रूप से चर्चित रहे हैं लेकिन कुछ रोग ऐसे भी हैं जो इतने पुराने हैं जितनी कि मानव सभ्यता। चेचक, मलेरिया, तपेदिक, हैजा कुछ ऐसे ही रोग हैं जिनका विवरण इतिहास में भी मिलता है बल्कि तब इन रोगों को मृत्यु का पर्याय कहा जाता था। आज चिकित्सा विज्ञान में हुई इतनी प्रगति के बाद भी इन बीमारियों का भय लोगों के मन में व्याप्त है। काफी समय से वैज्ञानिकों का ध्यान एड्स और कैंसर जैसे महारोगों पर केन्द्रित है। परिणामस्वरूप अन्य बीमारियों की ओर से उनका ध्यान हट सा गया था। बल्कि इनकी ओर ध्यान न देने का एक अन्य कारण यह भी था कि जब से एक मलेरिया को छोड़कर चेचक, तपेदिक आदि के टीके बने थे तब से इन रोगों को उन्मूलित रोगों की श्रेणी में गिना जाने लगा था। जब कि ऐसा था नहीं। टी बी या तपेदिक जिसे विगत का रोग समझा जाने लगा था अचानक ही फिर से उभर कर सामने आ गई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस रोग के पुनः तीव्र प्रसार की घोषणा करते हुए बताया है कि विकासशील देशों के साथ-साथ यह रोग औद्योगिक रूप से विकसित देशों में भी तेजी से फैल रहा है क्योंकि इस रोग के प्रसार में शारीरिक के साथ-साथ सामाजिक कारक भी समान रूप से उत्तरदायी होते हैं।

हाल में ही प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया भर में प्रतिवर्ष लगभग 30 लाख लोग इस बीमारी का शिकार हो रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियां इस रोग का अधिक शिकार हो रही हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 12,000 लोग इस बीमारी के कारण मर जाते हैं। यह रोग वायु के साथ फैलता है और अन्य जटिलताओं के कारण मृत्यु दर बढ़ जाती है। यदि एक तपेदिक संक्रमित रोगी का ठीक से उपचार न हो तो वह प्रतिवर्ष 10-15 व्यक्तियों को तपेदिक का रोगी बनाने का कारण बन सकता है।

यह रोग कोई नया नहीं है। इसका उल्लेख दो ढाई हजार वर्ष पुराने ग्रन्थों में भी मिलता है। उस समय में थाइसिस के नाम से ज्ञात इस रोग को जोहान स्कोलीन ने पहली बार ट्यूबरकुलोसिस का नाम दिया था क्योंकि इस माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस नामक जीवाणु की देन होता है। इस जीवाणु के मुख्य रूप से दो विभेद होते हैं जिनमें से एक विभेद मनुष्यों को और दूसरा विभेद गोपशुओं को संक्रमित करता है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि गोपशुओं को संक्रमित वाला यह विभेद मनुष्यों को संक्रमित न कर सकता हो। गोपशुओं को संक्रमित करने वाला यह विभेद मनुष्यों में अकसर दूध के साथ प्रवेश करता है। इस रोग के जीवाणु रोगी के थूक और कफ में पाए जाते हैं और रोगी के छींकने और खांसने के साथ ये जीवाणु हवा में फैलते हैं और श्वास के साथ दूसरे व्यक्ति में प्रवेश करते हैं। चूंकि सांस के साथ अंदर पहुंचे जीवाणुओं की संख्या बहुत

अधिक नहीं होती, ये कुछ विशेष प्रभाव नहीं दिखाते। संक्रमण की अवस्था प्राइमरी कम्प्लेक्स कहलाती है जिसके कुछ स्पष्ट लक्षण नहीं होते और समय के साथ धीरे-धीरे इनका प्रभाव खत्म होता जाता है। लेकिन यदि संक्रमित व्यक्ति का प्रतिरक्षी तंत्र इस संक्रमण को रोक पाने में असमर्थ होता है तो यही प्राथमिक हल्का संक्रमण आगे चलकर गंभीर रूप धारण कर सकता है। संक्रमण का मुख्य क्षेत्र अधिकतर फेफड़े ही होते हैं जहां ये जीवाणु फैलने शुरू हो जाते हैं और फेफड़ों के ऊतकों को नष्ट करने लगते हैं। यह गंभीर अवस्था मिलियेरी टी बी कहलाती है जिसके प्रमुख लक्षण होते हैं स्वास्थ्य का गिरना अर्थात् भार में कमी और तेज बुखार।

इस अवस्था का पता सीने के एक्स-रे द्वारा लगाया जा सकता है जिसमें दोनों फेफड़ों में मौजूद बड़े-बड़े पैच ट्यूबरकुलस संक्रमण की उपस्थिति दर्शाते हैं। कभी-कभी यह संक्रमण तंत्रिका तंत्र तक फैल जाता है जिसे टी बी मेनिनजाइटिस कहते हैं। सामान्य मेनिनजाइटिस के विपरीत, इसे बढ़ने में कुछ सप्ताह का समय लगता है। इसके प्रारम्भिक लक्षण होते हैं - हल्का बुखार, सिर दर्द और कभी कभी दौरों का पड़ना। बाद की अवस्था में बुखार तेज हो जाता है, बेहोशी सी रहने लगती है और गर्दन में अकड़न आने लगती है। अंतिम अवस्था में बहुत तेज बुखार के साथ कुछ विशेष अंगों पर से तंत्रिकाओं का नियंत्रण खत्म होने लगता है। यह अत्यंत खतरनाक अवस्था होती है। यदि रोग का निदान समय रहते न हो और निदान के तुरंत बाद ही उपचार न हो तो यह जरा सी भी देर घातक सिद्ध हो सकती है।

अधिकतर रोक के मूल संक्रमण के कई वर्ष बाद पल्मोनरी या फेफड़ों की टी बी पूरी तरह उभरती है। प्राथमिक अवस्था में फेफड़ों का निचला भाग प्रभावित होता है लेकिन बाद की अवस्था में फेफड़े का ऊपर वाला भाग प्रभावित होता है। संभवत: इसका कारण वहां काफी मात्रा में ऑक्सीजन की उपलब्धता और रक्त की अपेक्षाकृत कम आपूर्ति जीवाणुओं को फलने फूलने के लिए उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराते हैं। फेफड़ों के ऊपरी भाग में एक बार इस रोग के पूरी तरह स्थापित हो जाने के बाद वहां ऊतकों के नष्ट हो जाने के कारण जगह-जगह गड्ढे या कोटर बनने लगते हैं। ऐसा होते ही रोगी के थूक में रोग के जीवाणुओं की संख्या भी बढ़ने लगती है जो संक्रमण का एक प्रचुर स्रोत होते हैं। बच्चे सुगमता से इसका शिकार हो जाते हैं जिन्हें प्राइमरी टी बी, टी बी मेनिनजाइटिस और टी बी ब्रोंकोन्यूमोनिया हो सकता है। इससे बच्चे ही नहीं व्यस्क भी प्रभावित हो सकते हैं।

यदि पल्मोनरी टी बी का जल्दी ही सही इलाज न हो तो फेफड़ों के चारों ओर मौजूद प्लूरा में एक प्रकार का तरल पदार्थ बनने लगता है। इस तरल पदार्थ में कैल्शियम की मात्रा बहुत अधिक होती है इसलिए धीरे-धीरे फेफड़ों के चारों ओर एक कठोर आवरण बन जाता है। यह अवस्था फाइब्रोसिस कहलाती है। स्पष्ट है कि फेफड़ों के चारों ओर मौजूद इस अस्थि जैसे कठोर आवरण के कारण फेफड़े ठीक से काम नहीं कर पाते और रोगी को सांस लेने में कठिनाई होने लगती है।

रोग के अगले चरण में हृदय के चारों ओर मौजूद थैली - पेरीकार्डियम में भी ऐसा ही कुछ होने लगता है। ट्यूबरकुलस पेरीकारडाइटिस नामक इस अवस्था में हृदय के कार्य में काफी रुकावट होने लगती है और शरीर में रक्त की आपूर्ति में भी बाधा पहुंचने लगती है।

यद्यपि फेफड़ों की टी बी, रोग का सामान्य प्रारूप है, लेकिन शरीर के कुछ और भी भाग हैं जो टी बी से प्रभावित होते हैं जैसे गर्भाशय, प्रजननांग, गुर्दे, त्वचा और रीढ़ रज्जु। अफ्रीका और भारत में उदर में टी बी का होना एक आम समस्या है। इसका निदान अत्यंत कठिन होता है। यूं तो टी बी का संदेह होने पर सबसे पहले रोगी के थूक की जांच की जाती है। तीव्र संक्रमण होने पर थूक में ढेरों जीवाणु मौजूद होते हैं जिन्हें सूक्ष्मदर्शी में स्पष्ट ही देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक्स रे द्वारा भी इसका पता लगाया जा सकता है लेकिन उदर की टी बी के निदान का एकमात्र तरीका है यकृत की बायप्सी जिसमें रोगी के यकृत से एक छोटा सा टुकड़ा निकाल कर, सूक्ष्मदर्शी में उसकी जांच की जाती है जिससे जीवाणुओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति का पता चल जाता है। कभी-कभी टी बी का संक्रमण गर्दन में स्थित ग्रंथियों पर होता है। यह अवस्था स्क्रोफुला कहलाती है।

वर्ष 1950 से पहले टी बी को एक घातक जानलेवा रोग समझा जाता था। फेफड़ों की टी बी के लिए रोगी को आराम देना और अच्छा आहार देना ही एकमात्र इलाज समझा जाता था। इसके अतिरिक्त स्वच्छ पर्यावरण और ऑक्सीजन की अपेक्षाकृत कमी को भी इसके उपचार में सहायक माना जाता था। यही कारण था कि अधिकांश टी बी सेनेटोरियम पहाड़ी क्षेत्रों में बनाए जाते थे। इसके अलावा फेफड़ों के बहुत अधिक संक्रमित भागों को सर्जरी द्वारा निकाल दिया जाता था जिससे शरीर में रोग का फैलना बंद हो जाता था। रोग का निदान जल्दी न हो पाने के कारण, एंटीबायोटिक्स के प्रयोग से पहले ही रोग उपचार की सीमा से बाहर हो चुका होता था और ऊतक इस कदर क्षतिग्रस्त हो चुके होते थे कि वे वायु से ऑक्सीजन को रक्त में स्थानांतरित करने की स्थिति में ही नहीं होते थे।

आज परिष्कृत नैदानिक विधियां आविष्कृत हो चुकी हैं। आज उपलब्ध दवाइयों से टी बी को बढ़ने से तुरंत रोका जा सकता है, हालांकि फिर भी इसे ठीक होने में कई महीने लग सकते हैं। आज टी बी के संक्रमण को रोकने के लिए अनेक एंटीबायोटिक मौजूद हैं। इनको लम्बे समय तक प्रभावी बनाए रखने के लिए और जीवाणुओं में इनके प्रति प्रतिरोध क्षमता विकसित न हो सके, इसके लिए इनका प्रयोग रोग की आरंभिक अवस्था में मिश्रित रूप में किया जाता है। एक बार जीवाणुओं में तीव्र प्रवर्धन शुरू हो जाने के बाद, जिसमें संक्रमण के बाद कम से कम तीन महीने लगते हैं, टी बी के प्रसार को रोकना कठिन हो जाता है इसलिए, टी बी का पूरी तरह ठीक होना संक्रमण की अवस्था पर निर्भर करता है। जैसे कि पल्मोनरी टी बी को ठीक होने में कम से कम नौ महीने लगते हैं तो उदर की टी बी को एक वर्ष से अधिक भी लग सकता है। लेकिन अधिकतर होता यह है कि जैसे ही रोगी को कुछ आराम आने लगता है वह इलाज की ओर से लापरवाही करने लगता है और रोग पुन: अपना प्रकोप दिखाने लगता है। जबकि किसी भी रोगी के लिए कम से कम छ: माह तक उपचार करना आवश्यक होता है। इस प्रकार बीच में इलाज रोक देने से सबसे बड़ा खतरा औषधि-प्रतिरोधी विभेद के विकसित होने का होता है। ऐसी स्थिति में इलाज असंभव हो जाता है। टी बी के पुन: सक्रिय होने का एक कारण ऐसे विभेदों का विकसित होना है जिन पर दवाइयां असर नहीं करती। अब तक विश्व के 104 विकासशील देशों में इन विभेदों की पहचान की जा चुकी है । इन विभेदों के ही कारण टी बी वैक्सीन की प्रभाविता पर भी अनेक प्रश्न चिह्न लगाए जा रहे हैं।

टी बी एक ऐसा रोग है जो उन लोगों के लिए और भी खतरनाक सिद्ध होता है जो एच आइ वी अर्थात ह्यूमन इम्म्यूनोडिफिशियेंसी वायरस से पीड़ित होते हैं। एक अनुमान के अनुसार लगभग 100-150 लाख अमरीकी लोग टी बी के बैक्टीरिया से संक्रमित हैं और आगे चलकर जीवन के किसी भी सोपान पर टी बी से ग्रस्त हो सकते हैं। टी बी विकसित होने का यह डर उन लोगों में और भी ज्यादा है जो एड्स रोग के वाहक जीवाणु एच आइ वी जीवाणु से भी ग्रस्त है। चूंकि एच आइ वी का संक्रमण प्रतिरक्षी तंत्र को बुरी तरह कमजोर बना देता है इसलिए उसमें किसी भी संक्रमण के प्रति प्रतिरोध क्षमता शेष ही नहीं रह जाती। यही कारण है कि एच आइ वी से ग्रस्त लोगों में टी बी की संभावना अन्य की अपेक्षा सौ गुना बढ़ जाती है। आज स्थिति यह है कि एड्स से पीड़ित प्रति तीन व्यक्तियों में से एक, टी बी के कारण काल कवलित हो जाता है।

भारत में तपेदिक के नियंत्रण के लिए 1962 में एक 'राष्ट्रीय क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम' आरंभ किया गया। यद्यपि इस कार्यक्रम को अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई फिर भी इस रोग के उपचार एवं उन्मूलन संबंधी अनुसंधानों में भारत की भूमिका सदैव महत्वपूर्ण रही है। चेन्नई स्थित क्षयरोग अनुसंधान संस्थान एवं राष्ट्रीय क्षयरोग अनुसंधान संस्थान, बेंगलूर में हुए महत्वपूर्ण अनुसंधानों में इस रोग के इलाज को एक नई दिशा दी है। ये संस्थान इस रोग से संबंधित जानकारी को लोगों तक पहुचाने के लिए भी महत्वपूर्ण काम कर रहे हैं। भारत में आरंभ किए गए नियंत्रण कार्यक्रम के बहुत सफल न रहने के कारण यहां भी अब विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा चलाई गई डॉट्स अर्थात् डाइरेक्ट ऑब्जर्व ट्रीटमेंट विधि को अपनाया जा रहा है जिसके अन्तर्गत कुछ प्रशिक्षित स्वयंसेवी तपेदिक के रोगियों की लगातार देखभाल करते हैं, जैसे कि उन्होंने निर्धारित दवाईयां ली या नहीं, उपचार का पूर्ण विवरण उनके पास है या नहीं तथा वे निश्चित अवधि तक उपचार करवा रहे हैं या नहीं आदि-आदि। इस सेवा के काफी संतोषजनक परिणाम सामने आए हैं। यदि ऐसा ही रहा तो निस्संदेह इस रोग पर काबू पाने में बहुत मदद मिलेगी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार बांग्ला देश, चीन, भारत, इन्डोनेशिया, पाकिस्तान और फिलीपीन्स में प्रतिवर्ष तपेदिक के रोगियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। आश्चर्य की बात तो यह है कि जिन विकसित देशों में इस रोग का दूर-दूर तक कोई पता न था वहां भी अब तपेदिक के रोगी दिखाई देने लगे हैं। यदि इसे रोकने के कारगर उपाय जल्दी ही नहीं किए गए तो इसके घातक परिणाम हो सकते हैं। जिस तरह पोलियो को रोकने के लिए वैक्सीन देने के राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम सरकार द्वारा चलाए जा रहे हैं, इसी तरह के कुछ कार्यक्रम तपेदिक को रोकने के लिए भी चलाने होंगे। नहीं तो आज एक तिहाई संक्रमित लोगों से शेष में इस संक्रमण के पहुंचने में अधिक समय नहीं लगेगा।

सी4 जी/103 ए, जनकपुरी, नई दिल्ली 110058

सूर की नयन-अभिव्यंजना

—डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सूरदास रस-भाषा सिद्ध महाकवि, दार्शनिक, तार्किक, भावुक भक्त, संगीतज्ञ, गायक और दिव्य दृष्टि-सम्पन्न, ऋषिकल्प सत महापुरुष थे। ब्रज भाषा के श्रेष्ठतम कवि, कृष्ण भक्ति के अन्य उपासक, उक्ति ओज, अनुप्रास, वर्णों की स्थिति, उत्प्रेक्षाओं के सागर तथा शब्द से अद्‌भुत अर्थ उत्पन्न करने वाले सूरदास जिस प्रकार ब्रज भाषा के आदि कवि माने जाते हैं उसी प्रकार अपने वर्ण्य विषय की उत्तमता के कारण अंतिम भी। सूर का वर्ण्य विषय विविधताओं और विचित्रताओं का संगम है। उनका विश्व-विश्रुत सूर सागर तो वात्सल्य, शृंगार (दोनों पक्षों), सौन्दर्य, प्रकृति चित्रण, भक्ति और विनय की भाव-योजनाओं का रस-सागर है।

सूर सागर के अतिरिक्त महाकवि की अन्य रचनाओं में सूर सारावली, साहित्य लहरी और सेवाफल महत्वपूर्ण हैं। सूर सारावली, सूर सागर की सूची ही समझनी चाहिए। यद्यपि उसमें बीच-बीच में दृष्टिकूट पद आ गए हैं। सेवाफल दो पृष्ठों का पत्रक है, जिसमें भगवान की सेवा करने के फलों का विवरण दिया हुआ है। साहित्य लहरी सूरदास का अप्रतिम काव्य शास्त्रीय ग्रंथ है, जिसमें 109 अलंकार, 34 प्रकार की नायिकाएं, शृंगार रस के आलंबन और आश्रय, उद्‌दीपन विभाव, सात्विक अनुभाव, 27 संचारी भाव, शृंगार के अतिरिक्त करुण, वीर, भयानक, वीभत्स, वात्सल्य, भाव संधि, भाव-शबलता, भावोदय, भावशांति, अभिधा लक्षणा, व्यंजना का पूर्ण शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

(आचार्य सीताराम चतुर्वेदी; हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास से)

सूरदास को महाकवि के रूप में स्थापित करने का श्रेय सूरसागर को दिया जाता है, क्योंकि सामान्य पाठक को सूरसागर के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाओं के विषय में जानने-समझने का माध्यम मिल ही नहीं पाया। सुधी अध्येताओं और आलोचकों से विनम्र आग्रह है कि साहित्य-लहरी को चर्चा में लाने का प्रयास करना चाहिए ।

सूर के अंधत्व को लेकर बड़ा विवाद रहा है। किंतु अब यह भ्रांति दूर हो चुकी है कि सूरदास जन्मांध नहीं थे। वे जन्म से ही अंधे थे। उनके अंधत्व के विषय में श्री हरिराय जी ने "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" पर अपनी "भाव प्रकाश" टीका में लिखा है—"श्रीसूर तो सिल्लपट्ट अंधे थे—सो काहे ते। जो उनमें पाछे नेत्र नायँ, तिनको आंधरा कहिए, सूर न कहिए, और जे तो सूर हैं।" सूर के जन्मांध होने की पुष्टि संस्कृत मणिमाला के लेखक तैलंग ब्राह्मण श्री नाथ भट्ट ने भी की है।

''सूरदासः जन्मान्धोद्भूत''।

प्राणनाथ कवि भी इन्हें जन्मांध मानते हैं—

बाहर नैन विहीन सो, भीतर नैन बिसाल।
जिन्हें न जग कछु देखिबो लाखि हरि-रूप-निहाल॥

महाराज रघुराज सिंह ने सूर को जन्मांध मानते हुए लिखा है—

जनम हिं ते हे नैन-बिहीना।

स्वयं सूरदास ने भी अपने जन्मांध होने की पुष्टि की, उनके एक पद का पाठ निम्न प्रकार है—

किन तेरो गोविंद नाम धर्‌यो।
सूर की बेर निठुर ह्वै बैठे, जनमत अंध कर्‌यो॥

*　　*　　*

रहो जात इक पतित जनम को अँधरो सूर सदा को।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि सूरदास जी जन्म से ही अंधे थे, बाद में अंधे हुए, यह भ्रांति है।

कुछ ऐसे लोग, जो सूर को जन्मांध नहीं मानते उनका तर्क है कि सूरदास ने ऐसे-ऐसे सूक्ष्म दृश्यों का वर्णन किया है जो नेत्रहीन व्यक्ति कभी नहीं कर सकता। इस सन्दर्भ में यही कहना है कि नेत्र वाले व्यक्ति के ज्ञान की सीमा तो नेत्र प्रत्यक्ष ज्ञान तक ही सीमित रहती है, किन्तु जो प्रज्ञाचक्षु होते हैं उनके लिए तो मनश्चक्षु या कल्पना का संसार इतना विस्तीर्ण और व्यापक होता है कि वहां तक आंख वाले की पहुंच हो ही नहीं सकती। सूरदास ऐसे प्रज्ञाचक्षु मनीषी थे।

ऐसे सिल्लपट्ट (बरौनियों रहित) अंधे कवि के काव्य में बड़ी विलक्षण बात यह है कि उनके सूर सागर में ही लगभग 500 पद नयनों के ऊपर लिखे गए हैं, जिनमें 250 के लगभग नैनन के पद तथा 250 ही के आस-पास आंखिन के पदों के नाम से हैं।

इस संबंध में अभिनव भरत आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी ने अपने एक व्यक्तिगत पत्र के माध्यम से स्वीकार करते हुए लिखा है—''सूर ने नैनन के पद और आंखिन के पद लिखें हैं। सब में नए-नए बिम्ब हैं। संसार के किसी कवि ने नैन और आंख को आधार बनाकर इतने बिंबो में उत्प्रेक्षा और रूपक नहीं लिखें हैं।'' वाराणसी—24-3-2000 सूर के नैनन तथा आंखिन के पदों में अभिव्यंजनाएं खोजना इस लेख का उद्‌देश्य है। किन्तु इस विषय पर चर्चा करने से पूर्व अभिव्यंजना के अर्थ को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है। अभिव्यंजना की संकल्पना को साहित्य में स्थापित करने का श्रेय इटली के ब्रेनदेत्तो क्रोचे को जाता है।

अभिव्यंजना का सामान्य अर्थ है—अभिव्यक्ति। अभिव्यंजनावाद काव्य को देखने की दृष्टि प्रदान करता है। यह काव्य और कला के स्वरूप-विश्लेषण का एक व्यक्तिवादी सिद्धांत है, जिसने कला, कला के लिए है के मत को समर्थन और बल प्रदान किया है।

ब्रेनदेत्तो क्रोचे की मान्यता है कि ज्ञान के दो स्वरूप हैं—एक सहज ज्ञान और दूसरा—बुद्धि लब्ध ज्ञान। पहले को प्रतिभा और दूसरे को प्रमा कह सकते हैं। प्रतिभा, कल्पना द्वारा और प्रमा तर्क या विचार द्वारा प्राप्त हुआ करती हैं। सहज ज्ञान का सम्बन्ध काव्य और कलाओं से और बुद्धि या तर्कलभ्य ज्ञान का सम्बन्ध विज्ञान, शास्त्र और दर्शन से हैं। शुद्ध-सहज ज्ञान अपने आप में एक अभिव्यक्ति है, क्योंकि वह बिंबात्मक है। क्रोचे ने सहजानुभव ज्ञान को अभिव्यंजना कहा है। सहज ज्ञान वास्तव में भावात्मक ज्ञान है और भावाभिव्यक्ति है, भाव-अनुभूति मात्र नहीं है, वरन् अनुभूति का कल्पनागत रूप है।

(डा. भगीरथ मिश्र: काव्यशास्त्र से)

क्रोचे अपने दार्शनिक सिद्धांत अभिव्यंजनावाद को आत्मा या मन का दर्शन मानते हुए कहते हैं कि "संसार में जो भी कुछ तथ्य का आधार है, वह सब हमारे मन में विद्यमान है। अर्थात् किसी प्रकार के सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए जितने पदार्थों का विवरण दिया जाता है और जो जगत् में विद्यमान हैं, वे सब वास्तव में जगत में न रहकर मन में रहते हैं। भाव यह है कि मन ही अपनी अनेक क्रियाओं के द्वारा उस दृश्य का निर्माण कर लेता है, जिसे हम अस्तित्व या सत्ता कहते हैं।"

क्रोचे न माना है कि मन दो कार्य करता है—(1) ज्ञान (2) क्रिया (करने का निश्चय) उसने ज्ञान के भी दो भेद स्वीकार किए हैं—

1. अंत: प्रेरणा, अर्थात्, कल्पना, में सहसा बिना किसी प्रेरणा के ज्ञान का उदय होना।
2. विचार, अर्थात् निश्चयात्मिका बुद्धि से प्राप्त हुआ ज्ञान।

सौन्दर्य—विज्ञान या कला अंत: प्रेरणा पर अवलंबित है।

(आचार्य सीताराम चतुर्वेदी : समीक्षा शास्त्र)

निष्कर्षत: हमारी अंतप्रेरणा से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह कोई न कोई रूप ग्रहण करता है। अर्थात् जब मन के कोई भावना स्वयं उठती है, तब वह किसी न किसी रूप में प्रकट होती है, यही रूप अभिव्यंजना है। तात्पर्य यह है कि हमारा मन अंत: प्रेरणात्मक ज्ञान को जिस सांचे में ढालता है अथवा अंत: प्रेरणा ही अपने को प्रकट करने के अवसर पर जो रूप ग्रहण करती है, उसी को अभिव्यंजना कहते हैं। भाव यह है कि कला या अभिव्यंजना एक मानसिक क्रिया है, एक आध्यात्मिक आवश्यकता है। अभिव्यंजनावाद के अनुसार सौन्दर्य की सृष्टि अंतस् में होती है।

अभिव्यंजना के सिद्धांत को इन प्रमुख बातों को दृष्टि में रखकर विचार करें तो यह स्पष्ट होता है कि महाकवि सूर के सूरसागर में नयन-अभिव्यंजना का जो चित्रण हुआ है, वह सूर के सहज ज्ञान का ही प्रतीक है, उनकी अंत:प्रेरणा से उपजा बिंबात्मक वर्णन है। इसी अंत:प्रेरणा के बल पर सूर वात्सल्य का कोना-कोना झांक आए हैं। शृंगार के संयोग-वियोग को इतनी सूक्ष्मता और विशदता से चित्रित कर सकें हैं। सूरसागर में नयन-अभिव्यंजना के कतिपय पुष्ट प्रमाण यहां प्रस्तुत है :—

89 HA/2001—5A

जब कृष्ण गोकुल से मथुरा के लिए प्रस्थान करते हैं, उस समय मां यशोदा के हृदय को मार्मिक अभिव्यंजना—

गोकुल कान्ह कमल दल-लोचन, हरि सबहिनी के प्रान ।
कौन न्याब अकूर करत है, कहै मथुरा ले जान ॥

कृष्ण ने विशाल नयना राधा को अचानक ही देखा, विशाल नयनों को देखकर कृष्ण रीझ गए और नेत्रों में ठगोरी (ठगने की विद्या) पड़ गई—

सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन-नैन मिली परी ठगोरी।

मां यशोदा कृष्ण पर क्रोध करती है, क्योंकि गोपियां नित्यप्रति कृष्ण द्वारा चोरी करने अथवा छेड़छाड़ करने की शिकायतें लेकर आती ही रहती हैं। यशोदा को क्रोधित हुआ जानकर तथा कृष्ण के कमल नयनों के प्रति अनुरक्त हो गोपी ने मां यशोदा को रोक दिया—

चित्तैं धौं कमल नयन की ओर।
उज्ज्वल अरून असित दोसति है, दुहुं नैननि की कोर।
मौनौं सुधा-पान के कारन, बैठें निकट चकोर॥

कृष्ण की आंखों में अंधे सूर ने एक साथ उज्जवलता, रक्तता और श्यामलता को देखा। चंद्रमुख पर दो चकोर अमृतपान के निमित्त बैठे हैं। ऐसे विलक्षण रूपक सूर के अतिरिक्त और कौन बांधने में सक्षम हो सकता है ?

कृष्ण के वियोग के कारण गोपियों के शारीरिक अंगों में मलिनता और कालिमा व्याप्त है। उनकी आंखों से निरंतर अश्रुधारा प्रवाहित है, रुकने का नाम ही नहीं लेती, इन आंखों ने वर्षाऋतु को भी पराजित कर दिया है—

सखि इन नैननि तै घन हारे।
बिनु ही रितु बरसत निसि-बासर, सदा मलिन द्वोउ तारे॥

गोपियों की आंखें लालच के पंक में सनी हैं—

लोचन लालच तै न टरैं।

कृष्ण-वियोग में गोपियों की आंखें शरीर के अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक दुखी हैं। गोपियों ने संकल्प लिया है कि जब तक कृष्ण के दर्शन नहीं हो जाते, तब तक आंखों का शृंगार ही नहीं करेंगी—

हौं ता दिन कजरा देहौं।
जा दिन नंद-नंदन के नैननि, अपने नैन मिलि हौं॥

काव्य शास्त्र के आचार्यों ने विरह की जो 11 दशाएं गिनाई हैं, उन सभी का वर्णन सूर के साहित्य में उपलब्ध होता है। विरह को चिंता और जड़ता कों अवस्था में सूर को नयन-अभिव्यंजना दृष्टव्य है—

1. ऊधौ आंखियां अति अनुरागी।
2. देखि मैं लोचन चुबत अचंत।

89 HA/2001—5B

गोपी ने कृष्ण को देखा, कृष्ण की रूप माधुरी में गोपी की आंखें ऐसी भ्रमित हुई, जैसे-धन-धान्य से परिपूर्ण घर में घुसा चोर भ्रमित हो जाया करता है, क्या चुराएं, क्या छोड़ें? असमंजस की स्थिति और इसी ऊहापोह में प्रात: काल हो गया—

आंखियां जान, अजान भई,

यों भूलो ज्यों चोर भरे घर, निधि नहिं जाई लई।

फेरत पलटत भोर भयो, कछु लई न छाड़ि दई॥

गोपी के चंचल नेत्र वश से बाहर हैं, इन नेत्रों को जहां भी मुरली मनोहर दिखाई पड़ते हैं, ये आंखें वहीं लोभ-संवरण नहीं कर पातीं, चोरी-चोरी कृष्ण के रूप सौन्दर्य का पान करने लगती हैं। एक ही पद में गोपी के चंचल नेत्रों की कई अभिव्यंजनाएं सूर ने किस कुशलता से पिरोई हैं, दृष्टव्य है—

इन नैननि की टेव न जाइ।

गीधे हेमचोर ज्यों आतुर, वह छवि लेत चुराइ॥

मनुहुं मधु-कारन लोभी, हरि मुख पंकज पाइ॥

गोपी की आंखों को चोरी की आदत पड़ी तो वह छूटती ही नहीं, गोपी बार-बार समझाती है, पर आदत से लाचार ये अंखियां चोरी से बाज नहीं आतीं—

जाकी जैसी टेब परी री।

जैसे चोर तजै नहिं चोरी, बरजै, वहै करी री॥

ये अंखियां कृष्ण के हाथ बिक गई हैं, गोपी से इन आंखों का मिलन सपने-सा ही हो पाता है, उनके आने-जाने का भान गोपी को नहीं हो पाता—

अंखियां हरि के हाथ बिकानी।

सपने की-सी मिलनि करति है, कब आवति कब जाति॥

ब्रज ललनाओं के नेत्र उन्हें धोखा देकर उनके वश से बाहर हो गए हैं। नेत्रों के इस व्यवहार ने उनकी कुल-लाज का भी हरण कर लिया है, विरह की आग में जलने की छोड़ दिया है। गोपी की अभिव्यक्ति और सूर का वाग्वैदग्ध्य देखने योग्य है—

नैना हैं री ये बटपारी।

कुल लज्जा संपदा हमारी, लूटि लई इन सारी।

राधा के चंचल नेत्रों के कटाक्षपात मात्र से कृष्ण, मूर्छित होने की अभिव्यक्ति मर्मस्पर्शी बन पड़ी है—

चितई चपल नैन की कोर

मन्मथबान अनियारे निकसे फूटि हियै उहिं ओर।

अति व्याकुल घुकि धरनि परै, जिमि तरून तमाल पवन कै जोर।

राधा जी के खंजन-नयन निर्मल और मतवाले, पल भर के लिए भी स्थिर नहीं रहते। रूपकाभिव्यंजना देखिए-

खंजन नेन सुरंग रसमाते।

अतिसय चारू विमल, चंचल ये, पल पिंजरा न समाते॥

प्राचीन-अर्वाचीन अनेक कवियों ने नयनों के लिए असंख्य उपमान दिए हैं, परन्तु सूर की गोपियां कृष्ण-विरह में आंखों की सुन्दरता खो चुकी हैं, इसलिए कवियों द्वारा दिए गए उपमानों को गोपियां असत्य कहती हैं-

स्याम बियोग सुनौ हो मधुकर, अखियां उपमा जोग नहीं।

कंज, खंज, मृग, मीन होहि नहिं, कबिजन बृथा कहीं॥

कंजनहू की लगति पलक-दल, जामिन होति जहीं।

खंजनहू, उड़ि जात छिनक मैं प्रीतम जहीं तहीं॥

मृग होते संग ही संग, चंद्ध बदन जितहीं।

रूप सरोवर के बिछुरे कंहुं जीवत मीन महीं?

ये झरना-सी झरत सदा हैं, सोभा सकल वही॥

एक ही पद में विभिन्न उपमानों को पिरोकर सार्थक रूपक की अभिव्यंजना को भरने में सूर सिद्धहस्त हैं। गोपी का कथन उद्धव के प्रति-

ऊधौ क्यौं राखौं ये नैन।

सुमरि-सुमरि गुन अधिक तपत हैं, सुनत तुम्हारे बैन॥

ये जु मनोहर बदन इंद्व के, सादर कुमुद चकोर।

परम तृषारत सजल स्याम घन, तन के चातक मोर॥

मधुष मराल जु पद-पंकज के, गति बिलास जलमीन।

चक्रवाक दुति मनि दिनकर के, मृग मुरली आधीन॥

सकल लोक सूनौ लागत है बिनु देखे वह रूप।

सूरदास प्रभु नंद-नंदन के, नख-सिख अंग अनूप॥

गोपी कृष्ण के नेत्रों की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती हैं, कमल, मीन तथा खंजन पक्षी के पास इतनी सुंदरता नहीं जितनी सुंदरता कृष्ण के नेत्रों में है—

देखि री हरि के चंचल तारे।

कमल मीन को कहं एती छवि मुरली पर, कर मुख नैन भये इकचारे।

मनु जलरूह तजि बैर मिलत बिधु, करत नाद बाहन चुचुकारे॥

कृष्ण के नेत्र बड़े चंचल हैं। कृष्ण की भौंहों में दो रथों की उत्प्रेक्षा की अभिव्यंजना द्रष्टव्य है—

नैना (माई) भूलैं अनत न जात।

बदन प्रभामय, चंचल लोचन आनंद उर न समात॥

मानहू भौंह-जुबा रथ जोते, ससि नचवत, मृगमात।

कृष्ण के चंचल नेत्रों का प्रभाव गोपियों के मन-मस्तिष्क पर इस तरह छाया है कि विश्व में उपलब्ध समस्त उपमान कृष्ण के नेत्रों के समक्ष रंगहीन तथा प्रभावहीन दिखायी देते हैं। गोपी कृष्ण के इन नेत्रों की चर्चा अपनी सखी से करती हैं। सूर की बिंब-योजना श्लाघनीय है—

देखि री हरि के चंचल नैन।

खंजन-मीन-मृगज चपलाई, नाहि पटतर इक सैन॥

राजिवदल, इंदीवर, सतदल, कमल कुसेसय जाति।

निसि मुद्रित प्रातहि विकसित, ये विकसित दिन राति॥

अरुन सेत सित झलक पलक प्रति कौ बरनै उपमाई।

मनु सुरसति गंगा जमुना मिलि, असम कीन्हौ आई॥

अवलोकनि जलधार तेज अति, वहां न मन ठहराइ।

सूर-स्याम-लोचन अपार छबि, उपमा सुनि सरमाई॥

कृष्ण का रूप-सौंदर्य गोपियों को चकित किए डाल रहा है। ये गोपियां अपने नेत्रों को कह रही हैं कि कृष्ण की रूप माधुरी को अपने अंदर बसा लो। इस वर्णन में सूर ने जो उत्प्रेक्षा और रूपक चित्रित किया है, वह बेजोड़ है-

नैननि ध्यान नंद कुमार।

××× ××× ×××

भृकुटि बंकट, चारू लोचन, रही जुवती देखि।

मनौ खंजन चाप-डर डरि, उड़त नाहिं तिहिं पेखि॥

××× ××× ×××

सूर प्रभु-मुख चदंपूरन, नारि नैन चकोर।

सूरदास ने नैननि के पद तथा आंखिन के पदों में ऐसी उत्पेक्षाएं, ऐसे रूपक और बिंबों का प्रयोग किया है जो अपने आप में अनूठे और अन्यत्र दुर्लभ हैं। सूर ने नयन अभिव्यंजनाओं के लिए भ्रमर, मीन, मृग, खंजन, कमल, चकोर आदि के साथ-साथ ठगी की विद्या में प्रवीण तथा

गुप्त प्रेम को प्रकट करने के लिए नयनों को माध्यम चुना है। ये नयन लालची-वृत्ति को नहीं छोड़ पाते, दृढ़ संकल्प के रूप में इनकी अभिव्यंजनाएं विलक्षण हैं। वर्षा-रूप में हो या पश्चाताप, चिंता-जड़ता, चोर-चोरी हो या जहाज के पंछी-रूप में सभी अभिव्यंजनाएं एक से बढ़कर एक हैं। इस लेख के माध्यम से मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि सूर के नैननि के पद तथा आंखिन के पद विश्व-साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं, विशेषत: उस स्थिति में जब किसी जन्मांध कवि ने इन्हें रचा हो। यह विषय शोधपरक दृष्टि से अध्ययन का विषय है। विद्वगण इस ओर दृष्टिपात करें तो यह महाकवि सूर के लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी और उनके साहित्य का सही मूल्यांकन हो सकेगा।

केंद्रीय विद्यालय आयुध निर्माणी, रायपुर, देहरादून

मुहम्मद साहब और इस्लाम

—प्रो० हरिनारायण ठाकुर

सर्व विदित है कि मुहम्मद साहब ने जो धर्म चलाया, उसे इस्लाम कहते हैं। इस्लाम अरबी भाषा का शब्द है, जिसका सीधा अर्थ है, शांति में प्रवेश करना। इस दृष्टि से मुसलमान वह है जो मानव मात्र के लिए पूर्ण शांति की तलाश करता है। अर्थात् मनुष्यों के बीच प्रेम, भाईचारा और समानता का व्यवहार करता हुआ ईश्वर की शरण में जाना ही "इस्लाम" की सच्ची शिक्षा है।

इतिहास गवाह है कि जो ख्याति विशाल रोमन साम्राज्य ने छः सौ वर्षों में अर्जित की, जिसे प्राप्त करने में बौद्ध धर्म को चार सौ वर्ष और ईसाइयों को सैंकड़ों वर्ष लगे, उससे भी बड़ी ख्याति इस्लाम ने अपने जन्म के केवल सौ वर्षों के अन्दर ही प्राप्त कर ली। मुहम्मद साहब का जन्म सन् 570 ई. में हुआ था और 622 ई. में वे मक्का छोड़कर मदीने गये थे। हिजरत के इसी वर्ष से इस्लाम का वास्तविक आरम्भ माना जाता है। 722 ई. होते-होते दुनिया में न मुसलमानों के समान शक्तिशाली दूसरा कोई राज्य था न कोई धर्म।

किन्तु इतना बड़ा शक्तिशाली और व्यापक धर्म भी कालान्तर में विवादस्पद और सीमित हो गया। दुनिया के अन्य अनेक धर्मों की तरह इसमें भी विकार उत्पन्न हो गए। बावजूद इसके इस्लाम आज भी एक सच्चा और अच्छा धर्म है। आइए इस्लाम की पृष्ठभूमि की पड़ताल करते हुए इसकी शक्ति और सीमा पर विचार करें।

इस्लाम पर यह बार-बार आरोप लगाया जाता है कि इसका प्रसार तलवार के बल पर हुआ। किन्तु केवल यही बात सही होती, तो इस्लाम का इतना व्यापक प्रसार नहीं हुआ होता। देश-काल परिस्थिति के अनुसार इस बात में थोड़ी सच्चाई हो सकती है। किन्तु इसकी सबसे बड़ी सच्चाई है इस्लाम धर्म की समानता, भाईचारा, प्रेम और बन्धुत्व की शक्ति, जिसने बिना किसी भेदभाव के मानव-मात्र को अपने आकर्षण सूत्र में बांध लिया।

जिस समय हजरत मुहम्मद का जन्म हुआ, अरब में अशिक्षा, गरीबी, अंधविश्वास और अनाचार का बोलबाला था। जुआ, शराबखोरी, वेश्यागमन आदि आम बात थी। शादी-विवाह और यौन-सम्बन्धों के कोई खास नियम नहीं थे। वहां के लोग अपनी अशिक्षा के कारण बद्दू कहलाते थे और बद्दू समाज में मूर्ति-पूजा का जोर-शोर से प्रचलन था। मक्के के मंदिरों में स्थापित अनेक देवी देवताओं की मूर्तियों के बीच सबसे प्रतिष्ठित मूर्ति का नाम 'काबा' था, जो एक बड़ा सा काला पत्थर थी। लोगों में धर्म के नाम पर जादू-मंत्र और ताबीज का प्रचार था। ऐसे ही वातावरण में मक्के के एक 'कुरैश' कबीले में मुहम्मद साहब का जन्म हुआ। जन्म लेने के पूर्व

ही पिता अब्दुल्लाह का निधन हो गया और मात्र छः वर्ष की अवस्था में पुत्र को छोड़कर माता आमना भी चल बसी। अनाथ बालक मुहम्मद का पालन-पौषण उनके दादा और चाचा ने किया। बचपन से ही जीवन संघर्ष से जुझते रहने के कारण उनकी विधिवत् शिक्षा-दीक्षा नहीं हो सकी। इन्होंने जीविका के लिए व्यापार शुरू किया। मगर अपनी साधु प्रवृति और तत्कालीन समाज की दुर्दशा को देखकर उनका मन व्यापार में न लगा। उनका विवाह भी हुआ, मगर उन्होंने अधिक समय चिंतन मनन में ही लगाया। 40 वर्ष की उम्र में मक्का से दूर हेरा नामक पहाड़ी गुफा में मुहम्मद साहब को इहलाम (दैवी प्रेरणा) हुआ, जिसमें अल्लाह ने अपने दूत द्वारा इन्हें संदेश दिया। यही संदेश कुरान कहलाता है।

मुहम्मद साहब ने तत्कालीन समाज में प्रचलित बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, जादू-टोने एवं धार्मिक अंधविश्वासों का खंडन कर एक सीधे-सादे धर्म का प्रचार किया, जो पूर्णतः कर्म और सदाचार पर आधारित था। उनका कहना था हर मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कर्मों के लिए स्वयं उत्तरदायी है। कयामत के दिन मनुष्यों को उनके अच्छे-बुरे कर्मों का फल मिलेगा।

उनका व्यावहारिक धर्म बिना कोई कर्म किए भाग्य और भगवान पर भरोसा करने को नहीं कहता है। इस्लाम एक आचार धर्म है और यह मानव मात्र को सदाचार द्वारा इंसान बनने की प्रेरणा देता है।

''इस्लाम'' एक और एक मात्र ईश्वर ''अल्लाह'' को मानता है, जो सर्वशक्तिमान, दयालु, दानी और क्षमाशील है। मुहम्मद साहब ने एक सच्चे मुसलमान या इंसान के लिए पांच आचरण सुझाए, जो कलमा, नमाज, रोजा, जकात और हज के नाम से जाने जाते है।

कलमा ''ला इलाह इल्ललाह.....'' वाले मंत्र का पारायण है, जो ऐकेश्वरवाद का संदेश देता है और स्मरण दिलाता है कि अल्लाह एक है तथा मुहम्मद उसका रसूल है।

दिन में पांच बार ईश्वर से प्रार्थना करना नमाज कहलाता है, जिससे हम अल्लाह को भूले नहीं।

रमजान के महीने में दिन में उपवास रखना रोजा है। स्मरण रहे उपवास आत्मशुद्धि का सर्वोतम साधन है जिसे प्रायः सभी धर्म मानते हैं। हिन्दू धर्म में तो बिना उपवास के कोई व्रत ही पूरा नहीं होता।

जकात का अर्थ दान है। अपनी वार्षिक आय का चालिसवां हिस्सा (ढ़ाई प्रतिशत) गरीबों को दे देना जकात है। ध्यान रहे हिन्दू धर्म में भी दान का बड़ा महत्व है।

हज अर्थात् मक्के की तीर्थयात्रा। प्रत्येक मुसलमान को यदि संभव हो तो कम से कम एक बार मक्का की तीर्थयात्रा अवश्य करनी चाहिए। बाद में मुसलमान मक्का मदीना के अलावा संत फकीरों की समाधि या मजार को भी तीर्थ मानने लगे।

मुहम्मद साहब खुद सौदागर थे। उन्होंने व्यापार में अनैतिकता को करीब से देखा था। अतः उन्होंने सूदखोरी, घूसखोरी, मुनाफाखोरी को हराम कहा और उन्हें सख्ती से रोका। उन्होंने

झूठ, अहंकार, शराबखोरी, प्रपंच और फरेब से दूर रहने का उपदेश दिया। अल्लाह के समक्ष सभी समान है।

मुहम्मद साहब के प्रेम, भाईचारे और समानता के सिद्धांत का अरबवासियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मक्का की दलित पीड़ित जनता इस नए धर्म को उत्साह पूर्वक अपनाने लगी। लेकिन अभिजात वर्ग ने इसका कड़ा विरोध किया। मूर्ति पूजा और बहुदेववाद का विरोध तथा समानता का प्रचार उनकी समझ में नहीं आया। इसलिए वे मुहम्मद साहब पर टूट पड़े। निदान उन्हें मक्का छोड़कर भागना पड़ा। मुसलमानों के यहां यह घटना "हिजरत" कहलाती है। हिजरत यानी एक स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना। मुहम्मद साहब को 'अस-रिब' शहर के लोगों ने शरण दी। मुहम्मद साहब के सम्मान में उस नगर का नाम "मदीन तुन्नबी" अर्थात् "नवी का नगर" रखा गया। तभी से यह मदीना कहलाता है।

मुहम्मद साहब का धर्म अत्यन्त सरल और सुगम था। इसे कोई भी अपना सकता था। इसकी सबसे बड़ी विशेषता आदमी—आदमी के बीच के भेद को मिटाकर एकता और भाईचारे का संदेश देना था। यहां राजा-प्रजा, छोटे-बड़े एक ही दस्तरखान पर खा सकते थे और एक ही दरी पर नमाज पढ़ सकते थे। भाईचारे के इस भाव ने अरबी लोगों की बिखरी शक्तियों को संगठित कर दिया। अरबों की एकता और इस्लाम के प्रचार से मक्का भी पराजित हो गया। धर्म और राजनीति एक हो गए, जिसकी बुलंद बुनियाद पर विशाल अरब साम्राज्य खड़ा हुआ। धर्म के नेता खलीफा कहलाने लगे और खलीफा ही राजा भी हुए। इस प्रकार धर्मगुरू और राजा का सिंहासन एक हो चला।

धर्म की विजय और राजसत्ता की सफलता बहुत हद तक उनके नेताओं के चरित्र पर निर्भर करती हैं। मुहम्मद साहब का चरित्र ऐसा था जिनके प्रति स्वतः श्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी, उनके उत्तराधिकारी खलीफे अबूबक्र, उमर, उस्मान और अली भी उच्च कोटि के इंसान थे। उनकी सादगी, सच्चरित्रता, वीरता और कर्मठता ने इस्लाम के प्रति लोगों की आस्था और विश्वास को और पक्का कर दिया। प्रसिद्ध इतिहासकार गिब्ब ने लिखा है— "जहां भी ये अपना पड़ाव डालते थे, सेना के सभी लोग एक ही पांत में बैठकर प्रार्थना करते, एक ही दस्तरखान पर भोजन करते और फिर साथ ही, खलीफा के मुख से उत्साह प्रद उपदेश सुनते थे। चढ़ाई हो या तीर्थयात्रा, ये खलीफा सर्वत्र न्याय फैलाते थे।"

इस्लाम ने घर में रहकर ही धर्म करना सिखलाया। इसमें लौकिक सुखों का त्याग और संन्यास तथा वैराग्य भाव का नितांत अभाव है। इस प्रकार इस्लाम गृहस्थों के लिए गृहस्थों का ही धर्म है, जो संसार में रहकर ही संसार की बातें सिखाता है। दुनियादारी कैसे निभाई जाए, घर-गृहस्थी कैसे संभले, सच्चा इंसान कैसे बने इत्यादि बातें इस्लाम की मूलभूत चिंता है। इस्लाम हमें इसी जन्म में सुख और शांति के मार्ग बताता है। सादा जीवन और उच्च विचार इस्लाम का आचार पक्ष है। यही कारण है कि हजरत मुहम्मद सहित सभी आरंभिक खलीफा सादगी और संयम के प्रतीक थे। ईरान, मेसोपोटामिया, मिश्र, फिलिस्तीन और सीरिया आदि विश्व के विभिन्न देशों में अपने धर्म और साम्राज्य का विशाल धर्म ध्वजा फहराने वाले इस्लामी खलीफे तनमन से कितने

फकीर थे इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि हजरत उमर ने विशाल ईरान साम्राज्य को जीतकर जब विजेता की हैसियत से जेरूसलेम की सीमा में प्रवेश किया, तो उसके पास एक ऊंट भर की पूंजी थी, जिसपर एक कंबल, एक बोरा अनाज, खजूर और लकड़ी के कुछ बर्तनों के सिवा कुछ भी न था। यह थी इस्लाम की सादगी और मुहम्मद साहब की शिक्षा। इस्लाम का संघर्ष इस बात का संदेश देता है कि "आराम हराम है"। उन्नतिशील जाति को विलासिता का जीवन छोड़कर हमेशा कर्मशील बने रहना चाहिए।

मौलिक रूप में इस्लाम एक क्रांतिकारी धर्म है, जिसने मानव को अंधविश्वास और कुरीतियों से बचाया है। आरंभ में इस्लाम जहां-जहां पहुंचा वहां के समाज में भारी क्रांति और प्रगति उत्पन्न हुई। संस्कृति के चार अध्याय के अनुसार—"अरबों के आक्रमणकारी वीर जहां भी गए, जनता ने उन्हें अपना रक्षक और त्राता मानकर उनका स्वागत किया, क्योंकि जनता कहीं तो रोमन शासकों के भ्रष्टाचार के नीचे पिस रही थी, कहीं ईरानी तानाशाही के जुल्मों से त्रस्त थी और कहीं ईसाइयत का अन्धविश्वास उसे जकड़े हुए था"। मुहम्मद साहब की मृत्यु के सौ साल बीतते-बीतते "इस्लामिकों-अरब साम्राज्य उत्तरी अफ्रीका, ईरान, स्पेन, दक्षिणी फ्रांस, मध्य एशिया और मंगोलिया तक फैला जरूर, किन्तु इतने ही दिनों में इस्लाम में भी वे बातें घुस गई, जिन्हें रोकने के लिए आरम्भिक खलिफाओं ने भरसक कोशिशें की थीं"।

सत्ता प्राप्ति के बाद धार्मिक सेनाएं भी सुविधाभोगी बनने लगी। पदलिप्सा और सत्ता सुख धर्म पर हावी होने लगे। खलीफा पद के लिए झगड़े शुरू हुए और शिया सुन्नी का विवाद जोर पकड़ने लगा। कलमा, नमाज, रोजा, जकात और हज के अलावा इस्लाम धर्म में 'जिहाद' और 'जजिया' जैसे कर्म भी जुड़ गए। जिहाद् शब्द जहद् धातु से निकला है, जिसका अर्थ ताकत, शक्ति या योग्यता होता है। पश्चिमी विद्वानों ने इसका अर्थ संघर्ष माना है। यह संघर्ष बाहरी शत्रुओं और मन के अन्दर छुपे, ईर्ष्या, क्रोध, भय, वासना आदि-शत्रुओं के विरूद्ध भी हो सकता है। मक्के में उच्चरित कुरान में इसका अर्थ परिश्रम और उद्योग था। सामान्यत: कुरान में लड़ने की इजाजत नहीं है, किन्तु मदीने आकर आत्म-रक्षार्थ तलवार उठाना आवश्यक हो गया। आगे चलकर काजिओं ने इस जिहाद को धर्मयुद्ध घोषित कर दिया। हदीस में "हज" को भी 'जिहाद' कहा गया है।

'रिलीजन आफ इस्लाम' के लेखक मोहम्मद अली के अनुसार जिहाद का अर्थ इस्लाम के प्रचार के लिए युद्ध करना नहीं है। विधर्मियों को तलवार के जोर से इस्लाम में लाने की शिक्षा कुरान ने नहीं दी। मुल्ला और काजिओं ने पूरी दुनिया को दो हिस्सों में बांटकर एक को दारूल-इस्लाम अर्थात् शांति का देश और दूसरे को दारूल हरब अर्थात् युद्धों का देश कहा। दारूल इस्लाम वह था जहां इस्लाम का शासन था। इसके विपरीत जहां मुसलमानों का अधिपत्य नहीं था, उसे दारूल-हरब कहकर उन्होंने ऐसे देशों को जीतने और वहाँ इस्लाम का झंडा गाड़ने को 'जिहाद' कहा। इस प्रकार इस पवित्र शब्द का दुरूपयोग किया गया।

'जजिया' वह 'कर' था जो युद्ध के बाद संधि की शर्तों के अनुसार गैर-मुस्लिमों पर लगाया गया था; किन्तु कालान्तर में यह व्यक्तिगत कर बन गया। शिया-सुन्नी झगड़े ने भी इसे

विकृत किया। इस्लाम जब तक खलीफों के नेतृत्व में रहा, तब तक अत्यन्त शालीन और अनुशासित धर्म रहा। किन्तु उन्नीसवीं सदी के आरंभ में जब तुर्की के कमाल-पाशा ने खिलाफत उठा ली, तब से यह धर्म नेतृत्व विहिन हो गया और इसके धार्मिक अनुशासन में कमी आ गई।

फिर भी इस्लाम आज दुनिया के किसी भी धर्म से अधिक अनुशासित, समतावादी और अपरिवर्तनीय है। आज भी मुसलमान कुरान, हदीस और सुन्नत की हिदायतों के मुताबिक आचरण करते हैं। संसार में यही एक धर्म है जिसका विषय केवल व्यक्तिगत विकास नहीं, सामाजिक विकास भी है। व्यक्ति के सारे आचारों पर विचार करता हुआ यह धर्म विवाह, तलाक, शांति, युद्ध, कर्ज, सूदखोरी, दान, सामाजिक और राजनैतिक वर्ताव आदि सभी मानवीय पक्ष और सम्बन्धों की सीमा निर्धारित करता है। इसमें शराब पीने की कड़ी मनाही है और सूदखोरी पाप है।

व्याख्याता, हिंदी विभाग, राम दयालु महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर—842002 (बिहार)

महान समाज-सुधारकः सर सैयद अहमद खां

—नोतन लाल

उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारवादी नेताओं में सैयद अहमद खां का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी सुधारात्मक एवं उन्नतिशील विचारों के द्वारा राजाराम मोहनराय, केशव चन्द्रसेन तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे समाज-सुधारकों की भांति भारतीय सुधार आन्दोलन के इतिहास की धारा को एक नई दिशा प्रदान की और मुसलमानों की चहुंमुखी उन्नति के लिए बुद्धिवादी दर्शन को लोकप्रिय बनाने में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने मुस्लिम समाज में व्याप्त रूढ़ियों तथा कुप्रथाओं को समाप्त करने का भरसक प्रयत्न किया। इस लक्ष्य की पूर्ति-हेतु वे जीवन-पर्यन्त समाज-सेवा में लगे रहे।

' सैयद अहमद खां का जन्म 17 अक्तूबर, 1817 ई. को दिल्ली के एक शिक्षित, उन्नत एवं प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। उनके पिता जनाब सैयद मीर मुत्तवी मुगल दरबार में उच्च-पद पर आसीन थे। उनके नाना ख्वाजा फरीदउद्दीन अहमद असाधारण व्यक्तित्व के धनी थे। वे दिल्ली दरबार में मुगल बादशाह अकबर सानी के वजीरे-आजम (प्रधानमंत्री) थे। सैयद अहमद को किशोर अवस्था अपने नाना के घर रईसी वातावरण में बीती। उनकी माता अजीज-उन-निशां बेगम बड़ी धार्मिक, योग्य एवं वशिष्ठ महिला थी, जिन्होंने अपने पुत्र को कठोर अनुशासन एवं शिष्टाचार की शिक्षा-दीक्षा देकर उनमें उच्च नैतिक मूल्यों का समावेश करके, उन्हें अनुकरणीय आदर्शवाद का पाठ पढ़ाकर अन्धविश्वासों के प्रति घृणा उत्पन्न करने की प्रबल शक्ति प्रदान की।

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपनी माता से ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने उस समय के प्रसिद्ध विद्वानों से फारसी, अरबी और गणित की शिक्षा पाई। ज्योतिष शास्त्र में भी उन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। उस समय के प्रसिद्ध उर्दू शायर मौ. असदउल्ला खां गालिब के सम्पर्क में आए। उन्होंने भाषा का भी अच्छा व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। अपने पिता से उन्होंने तैराकी और घुड़सवारी तथा निशानेबाजी की दीक्षा ली थी। सन् 1838 ई. में अपने पिता की मृत्यु के बाद, जब उनकी आयु केवल 22 वर्ष की थी, तो उनको जीविकोपार्जन की चिन्ता हुई। अतः 1839 ई. में उन्होंने अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार में आगरा कमिश्नरी में नायब-मुन्शी के पद पर नौकरी हासिल कर ली । सन् 1841 ई. में उन्होंने मुन्सफी की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात उन्हें मैनपुरी में मुन्सिफ मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त कर दिया गया।

सन् 1842 ई. में सैयद अहमद खां का तबादला मैनपुरी से फतेहपुर सीकरी (आगरा) कर दिया गया। 1846 ई. उनके जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण था, क्योंकि इस वर्ष उनका स्थानान्तरण दिल्ली हो गया और उसके बाद उनको रोहतक में कायम-मुकाम (एक्टिंग) सदर अमीन नियुक्त करके स्थानान्तरित कर दिया गया। दिल्ली प्रवास के दौरान उन्होंने एक विश्वविख्यात पुस्तक "असारूस सनादीद" की रचना की जिसमें दिल्ली के संक्षिप्त, सटीक एवं विश्वसनीय इतिहास

के अतिरिक्त शाही महल एवं अन्य उल्लेखनीय ऐतिहासिक भवनों तथा 120 सुप्रसिद्ध महानुभावों के जीवन-वृतांत के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है। 13 जनवरी, 1853 ई. को उनका तबादला बिजनौर में स्थायी सदर अमीन के पद पर कर दिया गया।

बिजनौर आकर उन्होंने अपने मित्रों को जो पत्र लिखे हैं, उनसे आभास होता है कि उन्होंने उस समय भी बिजनौर में जलवायु, वातावरण एवं परिस्थितियों को साहित्य सृजन, लेखन एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के लिये बहुत ही उपयुक्त पाया, क्योंकि उन्हें लेखन में बहुत रूचि थी और बिजनौर आगमन से पूर्व उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थी। बिजनौर के इस प्रवास के दौरान उनकी एक यादगार पुस्तक ''आईने-अकबरी'' हैं जिसका सम्पादन उन्होंने बड़े परिश्रम एवं लगन से किया। ''आईने-अकबरी'', हिंदोस्तान की तवारीख का एक अहम दस्तावेज है, जिसकी उर्दू के प्रसिद्ध कवि हाली पानापी ने भी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। जिला बिजनौर के तत्कालीन कलैक्टर एवं डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर शैक्सपीयर ने यह पुस्तक सरकार को अपनी प्रबल संस्तुति के साथ भेजी थी, लेकिन आगरा में सन् 1857 ई. के विद्रोह के जमाने में यह नष्ट हो गई।

सैयद अहमद के जीवन का सबसे बड़ा कठिन और इन्कलाबी साल 1857 ई. था। 10 मई, 1857 ई. को मेरठ छावनी में अंग्रेजों के विरुद्ध जो विद्रोह शुरू हुआ, उसका प्रभाव बिजनौर पर भी पड़ा। इस जिले में नवाब नजीबुदौला के परपौत्र नवाब महमूद खां ने 8 जून, 1857 ई. को अपनी हकूमत कायम कर ली थी। विद्रोह के समय सैयद अहमद का परिवार विकट संकट में पड़ गया था। विद्रोहियों ने उनको घेर लिया था और बड़ी कठिनाई से उन्होंने अपने प्राण बचाए थे। उस समय भी उन्होंने अंग्रेज परिवारों की रक्षा की थी। विद्रोह के दमन के पश्चात् उनकी सराहनीय सेवाओं को दृष्टिगत रखते हुए तत्कालीन अंग्रेज स्पेशल कमिश्नर मिस्टर विल्सन, (स्पेशल कमिशनर आफ रूहेल खण्ड डिविजन), ने अंग्रेजी सरकार की ओर से उन्हें पुरस्कृत करना चाहा, लेकिन उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया।

सैयद अहमद खां ने विद्रोह को बहुत ही निकट से देखा था। उन्होंने उस समय अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''सरकशी जिला-बिजनौर'' लिखी, जो उन्होंने सन् 1858 ई. में मुरादाबाद से प्रकाशित कराई थी। तत्पश्चात विद्रोह के हर पहलू पर बड़ी गम्भीरता से विचारोपरान्त उन्होंने अपनी विख्यात पुस्तक ''असवाबे बगावते हिंद'' (भारतीय विद्रोह के कारण) जो मूल रूप से उर्दू में लिखी गई थी और जिसका अंग्रेजी में भी अनुवाद किया गया था। इंग्लैण्ड जाकर उसकी प्रतियां वहां के तत्कालीन प्रधान मंत्री सांसदों में वितरित की। इस पुस्तक में उन्होंने क्रान्ति के कारणों पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया कि प्रजा के प्रति शासकों का उपेक्षात्मक दृष्टिकोण, अंग्रेजों द्वारा भारतीय परम्पराओं के अनुकूल कानून-निर्माण, शासकों द्वारा प्रजा के प्रति सद्भावना रहित व्यवहार एवं प्रजातीय भेदभाव की नीति का परिपालन, सैन्य-संगठन में दुर्व्यवस्था, धारा सभाओं में भारतीयों के प्रवेश पर निषेध तथा जनता एवं शासकों में पारस्परिक समन्वय का अभाव विद्रोह के मुख्य कारण थे। ईसा मसीह के चयन उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा, तुम अन्य लोगों के साथ वैसा ही बर्ताव करो जैसा कि तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें, क्योंकि

पैगम्बरों का यही कानून है। इस पुस्तक से अंग्रेजों को भारतवासियों की विचारधारा समझने और तदोपरान्त अपनी नीतियों में सुधारात्मक पग उठाने का अवसर प्राप्त हुआ।

सन् 1860 ई. को सैयद अहमद का स्थानान्तरण गाजीपुर हो गया यहां उन्होंने एक मुस्लिम स्कूल की स्थापना की जिसमें उन्होंने हिंदुओं का भी सहयोग लिया। यहीं उन्होंने ''सांईटिफिक-सोसायटी'', की स्थापना की, जिसके माध्यम से सैयद अहमद खां ने हिन्दू और मुसलमानों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया। इस सोसायटी ने उच्च कोटि के साहित्यिक-ग्रन्थों का उर्दू और अन्य भाषाओं में अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी, उर्दू, फारसी और संस्कृत भाषाओं के विकास, प्रचार एवं प्रसार हेतु भी इस सोसायटी ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई। सन् 1864 ई. में उनका तबादला अलीगढ़ होने पर उन्होंने ''सांईटिफिक-सोसायटी'' का कार्यालय भी गाजीपुर से अलीगढ़ स्थानान्तरित कर दिया। यहां पर सोसायटी के लिये एक विशाल भवन बनवाया गया और जनता द्वारा सैयद अहमद खां द्वारा किए गए नई शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के प्रयासों की सर्वत्र सराहना की गई।

सैयद अहमद खां ने सन् 1866 ई. में एक गजट जारी किया जिसमें अनेक ऐतिहासिक एवं राजनैतिक तथ्यों का समावेश था। सन् 1869 ई. को उनका तबादला अलीगढ़ से बनारस हो गया। सन् 1869 में सैयद अहमद खां इंग्लैण्ड गए और वहां की सामाजिक, शैक्षिक एवं प्रशासनिक प्रणाली का निकट से अध्ययन करने पर उनकी यह धारणा बनी कि अंग्रेजों के शासन में रहकर और उनकी शिक्षा प्रणाली को अपना ही हिंदोस्तान विकास कर सकता है। इंग्लैण्ड, प्रवास के दौरान उन्होंने अंग्रेजी की दो प्रसिद्ध पत्रिकाओं ''टेटलर'' एवं ''स्पेक्टैटर'' के नैतिक मूल्यों की बहुत सराहना की। अतः भारत लौटने पर उन्होंने सन् 1887 ई. में अपनी पत्रिका ''तहजीबुल-अखलाक'' (सभ्यता एवं संस्कृति) प्रकाशित करके अपने बुद्धिवादी दृष्टिकोण का स्पष्ट परिचय दिया।

भारत के वायसराय लार्ड लिटन ने, 1 जनवरी, 1877 में दिल्ली में अपना दरबार आयोजित किया जिसमें उन्होंने भारत की जनता के लिये उन सिद्धान्तों एवम् आदर्शों को रखा जो उन्हें स्वीकार्य हों। इस सम्मेलन में स्वामी दयानन्द सरस्वती, केशव चन्द्रसैन ने सैयद अहमद के साथ इस आयोजन में भाग लिया, लेकिन इसका कोई ठोस परिणाम नहीं निकला। इसके बावजूद हिंदोस्तान के विभिन्न समाज-सुधारकों के विचारों-नीतियों की पर्याप्त जानकारी मिली। 1878 से 1882 ई. तक की अवधि के लिए सैयद अहमद खां को वायसराय की कौन्सिल का सदस्य मानोनीत किया गया।

सैयद अहमद खां हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे । उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने विचार 4 जनवरी, 1884 ई. को जालन्धर में इस प्रकार व्यक्त किये: ''ऐ अजीजो, हिंदोस्तान ही दोनों (हिन्दू-मुसलमान) का वतन है। दरहकीकत हिंदोस्तान हम दोनों बाएतबार अहले वतन होने के, एक कौम हैं और हम दोनों के इत्तफाक और बाहमी हमदर्दी और आपस की मुहब्बत से मुल्क को और हम दोनों की तरक्की व बहबूदी मुमकिन है। ऐ मेरे दोस्तो, मैंने बारहा कहा है और फिर कहता हूं कि हिंदोस्तान एक दुल्हन की मानिन्द है जिसकी खूबसूरत और रसीली दो आखें

हिन्दू और मुसलमान हैं। अगर वे दोनों आपस में निफाक रखेंगे तो हमारी दुल्हन भैंगी हो जाएगी और अगर एक दूसरे को बरबाद कर देगी तो वे कानी बन जाएगी। बस ऐ हिन्दुस्तान के रहने वाले हिन्दू और मुसलमानो, अब तुमको इख्तियार है कि चाहे इस दुल्हन को भैंगा बनाओ चाहे काना।''

सैयद अहमद खां इंग्लैड की शिक्षा प्रणाली से प्रभावित होने के परिणाम स्वरूप धर्मशास्त्रीय ज्ञान के पुनरूत्थान के साथ-साथ नया वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के उत्सुक थे। उनके कथनानुसार, ''शिक्षा का उद्देश्य छात्र की बौद्धिक चेतना तथा उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है।'' इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु 24 मई, 1875 ई. में उन्होंने अलीगढ़ में एक स्कूल की नींव डाली, जो कि शीघ्र ही ''मौहम्मडन एंग्लो ओरियंटल कालेज'' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आगे चलकर सन् 1877 ई. में यह अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ। यह सैयद अहमद खां की देश को सबसे बड़ी देन है।

लम्बी अवधि तक सरकारी नौकरी करने के बाद सन् 1876 ई. में बनारस से बतौर जज (स्माल काज कोर्ट) सेवा निवृत्त हुए। वे ईमानदार, निर्भीक उदार एंवम् स्वतन्त्र विचारों के पक्षधर थे। भारत के प्रधानमंत्री स्व. पं. जवाहर लाल नेहरू के कथनानुसार ''सर सैयद अहमद खां का मुसलमानों के लिए पश्चिमी शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करने का निर्णय निस्सन्देह बिल्कुल सही था। इसके बिना भारतीय राष्ट्रीता के निर्माण में वे अपनी प्रभावी भूमिका अदा नहीं कर सकते थे।''

सन् 1884 ई. में सैयद अहमद खां ने देश के विभिन्न भागों का दौरा करके हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रचार के लिए भाषण दिया। प्रत्येक वर्ग के लोगों ने उनका हार्दिक स्वागत किया और उन्हें बड़ा सम्मान दिया। अंग्रेजी सरकार ने उन्हें ''नाईट कामाण्डर आफ स्टार आफ इण्डिया'' (के. सी. एस. आई.) की उपधि एवं एडिनबरा यूनिवर्सिटी ने ''डाक्टर आफ ला'' की उपाधि से सम्मानित किया। बीमारी के कारण 24 मार्च, सन् 1898 ई. को उनका निधन हो गया। मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ की जामा मस्जिद के निकट उन्हें सुपुर्द-ए-खाक कर दिया गया। भारतीय इतिहास में उनकी सेवाओं को सदैव याद रखा जाएगा।

डी-1209, डबुआ कालोनी, फरीदाबाद (हरियाणा)

लाल बहादुर शास्त्री और उनका काव्य प्रेम

—सुलेमान टाक

भारत माता का लाल, भारत-पाक युद्ध का विजेता बहादुर और साहित्य में ''शास्त्री'' की योग्यता धारी लाल बहादुर शास्त्री ने भारत को 18 माह नेतृत्व देकर इस श्लोक को चरितार्थ किया :—

मुहूर्त ज्वलित श्रेयो
न च धूमाभित चिरम्

(अर्थात् एक क्षण के लिए प्रज्वलित होकर जलना, दीर्घ अवधि तक धीरे-धीरे धुंआ देते जलने से कहीं अच्छा है)

शास्त्री जी के हृदय में साहित्य और काव्य प्रेम समाया हुआ था जो उनकी अभिव्यक्ति में प्रकट होता रहता था। उनको जो पद्य पसन्द थे उनमें उनका (साहित्यिक) झुकाव तथा उनके जीवन दर्शन और व्यक्तित्व की झलक मिलती है।

बचपन में उन्हें ''नन्हा'' कहा जाता था और होश संभालने पर ''नन्हा'' (विनम्र सरल एवं साधारण) बना रहने का ''संदेश'' देने वाला यह दोहा उनका आदर्श था जिसे वे अक्सर गुनगुनाया करते थे :—

''नानक नन्हे हुवैं रहो जैसी नन्हीं दूब''
और रूख सूख जायेंगे दूब खूब ही खूब''

प्रधानमंत्री बनकर देश का भार अपने कन्धों पर उठाए इस महान व्यक्ति ने ''प्रभुता पाहि काहो मद नाहीं'' उक्ति को अपने जीवन में नकार दिया था।

स्वतंत्रता संग्राम में फैजाबाद जेल के एक मुशायरे में विश्वनाथ पांडेय का पढ़ा शेर उनकी जुबान पर चढ़ गया था :—

''रंग भर कर फिर इसे रखना है मेरे रूबरू
जिन्दगी मेरे लिए खाका है इस तस्वीर का''

जिन्दगी के खाके में शास्त्री जी ने जल कमलवत् रहते हुए नाना रंग भरे और इन रंगों ने उनके जीवन को दुनियां देखे वैसा महान बना दिया कि :—

लार्ड माउण्ट बेटन को उनके बारे में कहना पड़ा—

''हम व्यक्ति को इंचों से नहीं चरित्र से मापते हैं।''

शास्त्री जी को श्रीगोपीनाथ अमन की शायरी बेहद पसन्द थी उनका एक शेर उन्हें विशेष पसन्द था :—

"जिन्दगी की कयामतें यारो कम नहीं कितना डरें शमशीर"

अपने विद्यार्थी काल के एक मुशायरे में सुने मुहम्मद अली आशिक का एक शेर उन्हें याद था जिसे वे कभी-कभी याद करते रहते थे :—

"टुकड़े-टुकड़े कर दिया है, गम ने इस दिल को मेरे,
सख्त हैरत है खुदा का घर बने और टूट जाए।"

काशी विद्यापीठ में अध्ययनरत बालक लाल बहादुर से आचार्य नरेन्द्रदेव ने कविता सुनाने का कहने पर उन्होंने यह पंक्तियां सुनाई :—

"खामोशी है जुबां मेरी, नजर है तरजुमा मेरी,
मेरी सूरत बयां करती है, शरहैं दास्तां मेरी।।"

सचमुच उनकी जुबान खामोश रही पर कर्मण्यता ही उनका जीवन था। जवाहर लाल नेहरू के प्रेरक वाक्य—"बातें कम काम ज्यादा" तथा "आराम हराम है"। इन आदर्श वाक्यों को आत्मसात कर लिया था।

इस गोष्ठी में आचार्य नरेन्द्र देव ने फिर कोई नज्म सुनाने को कहा तो उन्होंने अपनी याद की हुई गालिब की गजल सुनाई :—

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हम सुखन कोई न हो और हम जुबां कोई न हो।
बे दरों दीवार का इक घर बनाना चाहिए।
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो बीमारदार ॥
और गर मर जाइए तो नौहख्वा कोई न हो॥"

शास्त्री जी ने यह गजल हृदय की गहराइयों से वेदना भरे स्वरों में पढ़ी कि गोष्ठी में उदासी छा गई। फिर सहसा श्री जवाहरलाल नेहरु ने हंसी-ठहाके से उदासी के वातावरण को भंग करते हुए कहा :—"गालिब मुगल साम्राज्य के बिखरते हुए दिनों के साक्षी थे और तुम विदेशी हुकूमत से मुक्त कराने वाले योद्धा हो। तुम्हारी जिन्दगी और मौत तो करोड़ों देशवासियों की जिन्दगी और मौत से बंधी हुई है।" और भारत जानता है कि शास्त्री का जीवन देश के करोड़ों लोगों के काम आया।

मित्र मंडली में जब मनोरंजन के वातावरण में साहित्य चर्चा होती तो वे आगे बढ़कर भाग लेने में तो सकुचाते किन्तु वातावरण बनने पर उर्दू शायरों के शेरों की झड़ी लगा कर मित्रों को मंत्रमुग्ध कर देते थे, यथा—

"गुजरना जब वहां दम भर ठहरना फिर चले जाना।
अगर बूए वफा आए तुम्हें गोरे गरीबां में।"

"तुम्हारे नाम की माला जपी जाती है देखो तो
मुसलसल दाना हाए अश्क मेरी चश्में गिरियों से।"

89 HA/2001—6A

''कोई नासूर बेशक, जिगर में हो के दिल में हो
बराबर खूं बहा जाता है, मेरी चश्में गिरियों से।''

''अम्न सनवार अहमे दुनियां के नहीं मुझको पसन्द
मैं जो मिल लेता हूं, लेकिन मेरा दिल नहीं मिलता।।''

स्वराज्य के लिए स्वतंत्रता संग्राम के लिए व तप और त्याग के मार्ग पर चली कांग्रेस में पथभ्रष्ट और द्वेषपूर्ण प्रतिद्वन्द्वता को देख उन्होंने दु:ख भरे स्वरों में कहा था :—

''काबा बराए मरकजे असलाम हो गया।
किस काम को बना था किस काम आ गया''

आजादी के बाद पद लिप्सा लिए हुए कांग्रेसी नेताओं का कुर्सी और पदों के लिए बड़े नेताओं के चक्कर लगाना उन्हें पसन्द नहीं था। इसी प्रसंग में उन्होंने यह शेर पढ़ा था :—

''भागती फिरती दुनियां, जब तलब, करते थे हम।
जब से नफरत आ गई, वह बेकरार आने लगी॥''

सच है शास्त्री जी ''कुर्सी दौड़'' से सदैव दूर रहे और उत्तरदायित्व को चुनौती हुई तो पद को तिलांजलि देने में देर न की पर बिना चाहे प्रधान मंत्री की कुर्सी को सुशोभित कर उसका गौरव बढ़ाया।

''कामराज योजना'' के अनुरूप मंत्री पद से त्याग पत्र देने वालों में वे अग्रगण्य थे। इसी अवसर पर श्री नेहरु के समक्ष उन्होंने महावीर त्यागी का यह शेर सुनाया जिसकी पंडित जी ने खूब दाद दी थी।

''वे जिनकी दोस्ती में, दोस्तों से दुश्मनी कर ली।
उन्हीं की दुश्मनी हमसे, जमाना इसको कहते हैं॥''

पंडित नेहरु के निधन के कुछ ही दिनों पूर्व 29 अप्रैल, 1964 को श्री बालकृष्ण ''नवीन'' की चौथी पुण्य तिथि पर होने वाले उनके ''हम विषयपायी जनम-जनम'' के काव्य संकलन ग्रन्थ के विमोचन समारोह में शास्त्रीजी ने यह शेर पढ़ा :—

''खुदा जाने ये किसकी ज्लवा गाहे नाज है दुनियां
हजारों जा चुके लेकिन वही रंगत है महफिल की।।''

इसके 20 दिन बाद नेहरु जी नहीं रहे और बीस माह बाद शास्त्री जी भी ''जाने वालों'' के साथ हो गए। शास्त्री जी को बच्चों और नौकरों-चाकरों पर बड़ी आत्मीयता एवं ममता थी। ललिता जी जब कभी नौकरों की शिकायत करती एवं बिगड़ती थी तब वे अपनी गर्दन हिलाकर ऐसा नहीं करने का संकेत देते और अक्सर यह शेर बोला करते :—

''कुदरत को नहीं पसंद है सख्ती जुबान में,
इसलिए ही दी नहीं हड्डी जबान में॥''

89 HA/2001—6B

शास्त्री के मामा पंडित निष्कामेश्वर जी अक्सर कबीर का भजन "झीनी-झीनी बिनी चदरिया" बड़ी तन्मयता से सुनते थे और उसे अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया था इस भजन की अंतिम कड़ियों को :

"दास कबीर जतन से ओढ़ी
ज्यों ही त्यों धर दीनी चदरिया"

मन ही मन गुनगुनाया करते थे। सचमुच वे अपनी कायारूपी चादर को बेदाग ही छोड़ गए।

लिलिप्त भाव से सब कुछ ईश्वर को अर्पण कर कर्म करते रहना उनका जीवन था—कबीर का यह भजन भी उनके हृदय एवं जिह्वा पर रहता था :—

"साधों सहज समाध भली
गुरु प्रताप जा दिन से जागों
दिन दिन अधिक चली ....."

ईश्वर में आस्था के साथ कर्म करते रहना उन्हें प्रिय था। पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह में अभावों के जीवन में संतोष धारण करते हुए चलते रहने में उनका विश्वास था, वे कहते थे :—

"हारिए न हिम्मत बिसारिएं न राम
जाहिं विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये॥"

तथा

"हानि-लाभ जीवन-मरण
जस अपजस विधि हाथ॥"

सहयोगी और सहकर्मी जब शास्त्री जी का ध्यान दिलाते कि उनके पूर्वजों के गाढ़ी कमाई के मकान-जायदाद को नुकसान पहुंच गया है तो वे इसे सहजता से लेते हुए कह देते :—

"दरों दिवार से बगदाद की आती है सदा
बस्तियां बसती हैं उजड़ने के लिए"

कवियों, शायरों एवं रचनाकारों की काव्य पंक्तियां उनकी जुबान पर रहती थीं, पर स्वयं भी हिंदी एवं उर्दू के अच्छे ज्ञाता थे और काव्य रचना में निपुण थे। एक बार जेल यात्रा से लौटे तो उन्हें अपनी डेढ़ वर्षीय बिटिया की मृत्यु का हृदय विदारक दृश्य देखना पड़ा। हृदय विदीर्ण होना स्वाभाविक था। पत्नी ललिता जी को सांत्वना देते हुए उसका ध्यान बंटाने के लिए स्वरचित पंक्तियां लिख कर दीं :—

"पुष्पा तो बन गई हमारी अमर देश की रानी
बीती याद बनाती पागल, शेष रहीं बस एक कहानी॥"

"कमनीय कमल से हाथ चूमकर, स्वर्णिम, सुख पा लेती थी।
मुझ गरीब दुखिया मां को अब पुष्पे क्यों छोड़ चली।।
पहले तो बंधन में बांधा फिर इसको खुद तोड़ चली।
क्या यही खेल इस निठुर नियति का जो तुमने भी खेला है।
यह कह बंधन तोड़ चली, कि जग तो झमेला है।"

ऐसा था शास्त्री जी के जीवन का काव्य पक्ष।

पूर्व निदेशक (दूरस्थ शिक्षा) मुल्ला स्ट्रीट, स्कूल रोड़, बाली, जिला-पाली (राजस्थान)

नारी : एक अनुशीलन

—दयानाथ लाल

कहा जाता है कि नारी ब्रह्मा की श्रेष्ठतम कृति है किन्तु नर और नारी में श्रेष्ठ कौन है; यह भी एक सवाल उभरकर सामने आता है। इस विषय को लेकर विद्वानों में मतभेद है परन्तु हमें यह स्वीकारने में तनिक भी हिचक नहीं होनी चाहिए कि नारी-रचना से ही जीव एवं जगत् को लाभ हुआ है तथा समस्त विश्व की सभ्यता और संस्कृति के विकास में नारी का सिर्फ सहयोग ही नहीं रहा अपितु उसके मूल-में नारी ही विद्यमान रही। विकास चाहे जीवन के किसी भी क्षेत्र में हो, उसे हम एक अनवरत प्रक्रिया ही कहेंगे। प्राचीन ग्रन्थों में, नर हों या नारी, दोनों का उल्लेख है।

संस्कृत का एक वाक्य है—''एकोअहम् बहुस्याम:'' याने एक बार ब्रह्मा की इच्छा हुई कि एक से मैं अनेक हो जाऊं। अत: उन्होंने अपने को दो रूपों में विभाजित कर वाम भाग से नारी और दक्षिण अंग से पुरुष की रचना की। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कुछ भारतीय दर्शन के जानकार शिवशक्ति में, ब्रह्मा-सरस्वती में, विष्णु लक्ष्मी में, राधाकृष्ण में कोई अन्तर नहीं मानते। इसी भावव्यन्जना को भारतेन्दु ने भी वाणी दी—

''जो हरि सोई राधिका''
जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष
या न कछु विभक्ति॥''

द्वैतवाद को यहां स्थान नहीं मिलता; यह भी ठीक है; लेकिन हमें इतने पर ही संतोष नहीं कर लेना चाहिए। पुराणों के कुछ ऐसे भी ज्ञाता हैं जिनकी विचारधाराएं उपर्युक्त विचारधाराओं से अलग दीखती हैं, वैसे ज्ञानियों का कहना है कि पुरुषों में आठ और नारियों में बारह गुण होते हैं। नारी में जो बारह गुण होते हैं, वे इस प्रकार हैं—हाव, भाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, शौर्य, प्रगल्भता, उदाहरण, स्थिरता तथा गाम्भीर्य। नारी के इन्हीं गुणों को रसशास्त्रियों ने विशेष रूप से विवेचित किया है। नर-नारी के बीच जहां तक श्रेष्ठता का सवाल है तो नारी ही संसार की अमूल्य निधि है, सौंदर्य है। कष्ट सहन में दृढ़; सात्विक मर्यादा में कटिबद्ध और धर्मपरायणता में वह अडिग दिखाई देती है। सूफी कवियों ने नारी शरीर के द्वारा ही ईश्वर के दिव्यप्रेम एवं स्वरूप के दर्शन किए, उनकी झांकी प्राप्त की। अन्य भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के मुताबिक नारी आदिदेवी मां पार्वती का रूप है। अतएव नर और नारी में नारी का ही स्थान श्रेष्ठ माना जाना चाहिए लेकिन नारी

की यह महानता है कि वह पुरुष को ही अपने से श्रेष्ठ मानती है; उसे ही सब कुछ समझती है। यदि ऐसा गुण नारी में नहीं होता तो सीता भगवान राम के साथ किसी भी कीमत पर वन में नहीं जाती। जब भगवान श्रीराम वनवास के लिए चल पड़े थे तो सीता भी उनके साथ चल पड़ी थी और यों कहा था :—

"जिय बिनु देह
नदी बिनु वारी।
तैसेई—नाथ
पुरुष बिनु नारी॥"

नारी रूप के अन्तर्गत नारी—सौंदर्य विशेष रूप से विवेचनीय है पर सौंदर्य है क्या? इसे सबसे पहले समझना-बूझना जरूरी है। दरअसल सौंदर्य वही है जो मानवमन में रस का संचार करे और सुन्दर चीज की वजह से जब हमारे मन में रस-संचार की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है और उसके फलस्वरूप जो कुछ हम अनुभव करते हैं, वस्तुतः उसी का नाम है—सौंदर्यबोध या सौंदर्य चेतना। नारी के लगभग सभी अंगप्रत्यंग इसी सौंदर्य चेतना के केन्द्र-बिन्दु हैं। नारी रूप-चित्रण में कवि या कलाकार कहीं हिचकता हुआ दिखाई नहीं देता। अन्य रीतिकालीन कवियों की नाईं कवि सेनापति ने भी नारी सौंदर्य को अत्यधिक बखाना है। उनकी दृष्टि में नारी-अधर एवं उसके दांतों का सौंदर्य देखिए :—

"बिम्ब है अधर बिम्ब
कुन्द से कुसुम दन्त।"

सचमुच में मानव जीवन जितना सुन्दरता से प्रभावित होता है उतना संसार की किसी अन्य वस्तु से नहीं। नर हो या नारी दोनों की यही जन्मजात प्रवृति रही है। मैथिली कवि विद्यापति ने नारी के मांसल रूप का विश्लेषण कर अपने अद्‌भुत दृष्टिकोण का परिचय दिया। नारी-रचना को संस्कृत के महाकवि कालिदास ने एक घटना के रूप में बताया। हिंदी समीक्षकों का कहना है कि विश्व की समस्त श्रेष्ठ एवं सुन्दर चीजों को एकत्र कर स्वयं ब्रह्मा ने नारी की सृष्टि की और यही कारण है कि वह अत्यधिक मादक तथा मोहक बनी। कविवर मतिराम भी इसे स्वीकारते हैं:—

"संचि विरंचि निकाई मनोहर
लाजति मूरतिवन्त—बनाई।"

यों तो प्रत्येक युग में काव्य का केन्द्र नारी रही है किन्तु रीतिकाल में उसका जो अत्यधिक वर्णन हुआ उस पर हमें अवश्य दृष्टि डालनी होगी। लेकिन उसके पहले एक बात और, नारी एवं उसके अंग-प्रत्यंगों का रोचक वर्णन जो हिंदी जगत के मध्यकाल की देन है, उसके प्रति भला हम मुंह कैसे मोड़ सकते? सूर ने वात्सल्य रस के द्वारा रतिभूमि को अद्‌भुत एवं अनोखा रंग प्रदान किया। तो कबीर ने नारी को माया, मोहनी, ठगनी के रूप में देखा:—"कबीर माया मोहनी जैसी मीठी खांड।" नारी माया का रूप जरूर है, इस पर दो मत नहीं हो सकते फिर भी उसमें परम ज्योति का प्रकाश-पुंज है। सूफी संतों ने नारी को

''नूर'' कहा, जिससे सारा विश्व जगमगाता है; चमकता है। नूर कवि तो नारी के पार्थिक रूप को निहारते-निहारते थके नहीं:—

''नर नारिन के अंग में
बहे नूर परकास।''

सचमुच में रक्त एवं मांस बने शरीर में ईश्वर या अल्ला का नूर झलकता है। हमारे यहां की नारी के हावभाव पर विचार करते हुए मालवीय जी का कथन बड़ा रोचक एवं हृदयग्राही है। उनके अनुसार ''—'' भारतीय नारियां प्राय: पति की आज्ञा पालन करने में हिचकती नहीं, भले ही उनकी इस ओर रूचि हो या नहीं। अत: ''हां'' कहना उनका स्वभाव होता है किन्तु प्रणय-बेला में वे प्राय: ''ना'' का प्रयोग बड़ी उत्सुकता से करती हैं। कार्य वही करती हैं जो प्रेमी चाहता है किन्तु ''नाहीं'' या ''ना'' भी कहती जाती हैं।
1. दूल्ह सुकवि ने ऐसा अनुभव किया है, यथा :—

''धरी जब—बाहीं
तब करी तुम नाहीं
पाइ दियो पलिकाही
नाहीं—नाहीं के सुहाई हो।
बोलत ये—नाहीं
पट खोलत में नाहीं
कवि दूलह-उछाही
लाख भांतिन लहाई हो।''

हर व्यक्ति अपनी-अपनी क्षमता एवं बुद्धि के मुताबिक किसी विषय पर विचार व्यक्त करने के लिए बिल्कुल स्वतंत्र है तथा यही वजह है कि बुद्धिवाद और हृदयवाद का द्वन्द्व आज भी मानव समाज में विराजमान है। राम-काव्य-परम्परा में तुलसी की नारी भावना इसका एक प्रमुख प्रमाण है। नारी की प्रकृति रावण के अनुसार जरा गोस्वामी तुलसी की भाषा में निरखिए :—

''नारी-सुभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस, अनृत, चपलता, माया।
भय, विवेक, असौच, अदाया॥''

नारी-हृदय की गति कैसी होती है; उसमें कितना कपट भरा रहता है; इसका विचित्र चित्र रामचरित मानस में जो अंकित है, वह भी यहां अवलोकनार्थ प्रस्तुत है :

''बिधिहु न—नारि
हृदय-गति जानी।
सकल कपट—अघ
अवगुन——खानी॥''

कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है—तुलसी काव्यगंगा पर। क्या वैदिक साहित्य की ओर उनका ध्यान न गया था? नारी को तो तीनों लोक की जननी तक कहा गया है। शक्ति संगमतंत्र के ताराखण्ड में शिवजी कहते हैं :—

"नारी त्रैलोक्य जननी
नारी त्रैलोक्य रूपिणी।
नारी त्रिभुवनाधारा—
नारी देह—स्वरूपिणी॥"

जो हो, पर तुलसी साहित्य की ओर जब पुनः ध्यान जाता है तो एक बात और याद आती है और वह यह है कि तुलसी के मुताबिक नारी में संयम का घोर अभाव है। किसी भी सुन्दर पुरुष को देखकर वह रसार्द्र हो जाती है; अपना चारित्रय-विवेक खो बैठती है अर्थात् वह किम् कर्त्तव्य विमूढ़ हो जाती है। राम चरित मानस में इस तरह का प्रसंग आया है :—

"भ्राता, पिता, पुत्र उरगारी।
पुरुष मनोहर निरखत नारी।।
होइ बिकल मन सकहिं न रोकी।
जिमि रबिमनि द्रव रबिहिं बिलोकी॥"

इतना ही नहीं और आगे देखिए कि नारी कितनी अधम से अधम प्रकृति की होती है; हालांकि यह एक अजब-सी-बात लगती है, पर विश्व महाकवि तुलसी कृत रामचरित मानस में ऐसा वर्णन पाया गया है और जो पाया गया है उसकी तरफ भला किसका ध्यान केन्द्रित नहीं हो सकता? अपने बारे में, अन्य नारी के बारे में शबरी भगवान राम से क्या कहती है और किस प्रकार कहती है, उसकी भावना दृष्टव्य है:—

"अधम तै अधम
अधम अति नारी।
तिन्ह महं—मैं
मतिमंद-गंवारी॥"

कुछ आलोचकों का मत है कि तुलसीदास ने नारी-जाति की सदा निंदा की किन्तु इस कथ्य के विरोध में तुलसी-समर्थकों का कहना है कि—"कवि पर देशकाल का प्रभाव था। उस युग में स्त्रियों की दशा अत्यन्त हीन थी। वे वास्तव में ही अज्ञ, मतिमंद तथा लोकवेद-विधिहीन थीं। इसके अतिरिक्त मध्यकालीन दृष्टिकोण भी नारी को केवल जीवन का उपकरण अथवा दासी ही मानता था। अतएव तुलसी ने अपने युग की स्थिति तथा विचार धारा के अनुरूप ही नारी का चित्रण किया।"

2. हिन्दी के सुप्रसिद्ध समीक्षक डा. नगेन्द्र इस तर्क को थोड़ा भी नहीं स्वीकारते। इसका खंडन करते हुए वे कहते हैं कि—''यह तर्क साधारण कवियों के लिए तो ठीक हो सकता है, तुलसी जैसे क्रान्तद्रष्टा कवि के लिए नहीं। और फिर, सूर ने ऐसा क्यों नहीं किया?''

3. नगेन्द्र जी का कहना बहुत हद तक सही जरूर है लेकिन सर्वांग सही नहीं क्योंकि तुलसी ने नारी की सिर्फ निंदा ही नहीं की सच तो यह है कि उनकी दृष्टि में नारी जब-जब जैसी दिखाई दी तब-तब उन्होंने उसके संबंध में वैसा ही भाव व्यक्त किया। कहीं कहीं नारी अंग प्रत्यंगों की प्रशंसा भी तुलसी ने खुले शब्दों में की है। जैसे-''नारी नयन सर काहू न लागा?'' एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा—''नारी न मोहे, नारी के रूपा।'' क्या इसमें नारी सौंदर्य नहीं झलकता? खैर, इस विवाद के घेरें से हटकर एक बार मैं पुन: कहूंगा कि तुलसी ने नारी या नारी जगत की प्रशंसा भी जरूर की। हां इतना सही अवश्य है कि प्रशंसा की अपेक्षा उसकी निंदा उन्होंने अधिक की और हो सकता है यही कारण रहा हो जिसके चलते रीतिकालीन कवियों की आंखें नारी सौंदर्य चित्रण के प्रति खुलीं और जब खुलीं तो तुलसी के विपरीत नारी की प्रशंसा जमकर उन्होंने की। यहां तक कि नारी के एक-एक अंग प्रत्यंग के सौंदर्य भी तत्कालीन काव्य-लोक में अछूते नहीं रहे। कुछ आलोचक रीति कालीन काव्य पर तीखा प्रहार करते हुए कहते हैं कि — ''वह हेय एवं निन्दनीय है क्योंकि उसमें प्रकृति का निरर्थक प्रयोग हुआ है।'' इस प्रकार के विचार व्यक्त करने वालों में डा. नन्द किशोर तिवारी का भी नाम आता है परन्तु सही अर्थों में उपर्युक्त विचार के संबंध में कोई मान्यता नहीं मिलनी चाहिए। कारण, रीतिकालीन काव्य तो पूर्ण समृद्ध काव्य है और मूलत: इसी काल के कवियों ने काव्य की कला को कला के शुद्ध रूप में ग्रहण किया। नारी सौंदर्य-विश्लेषण में उनका निरीक्षण एवं परीक्षण अनूठा एवं अपूर्व सिद्ध हुआ । नायिका के रूप में जब उमंग आती है तो उस वक्त ऐसा लगता है मानों उसकी तरूणाई का नवीन प्रष्फुटन हुआ हो। नारी एवं रीतिकालीन काव्य परम्परा में नारी सौदर्य चित्रण पर प्रकाश डालते हुए हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान सोमदत्त गालवीय का मानना है कि इस जगत का सार ही नारी है क्योंकि वह शृंगार की श्रेष्ठ परिणति है, सम्मोहिनी विद्या है, सौंदर्य रूप श्रेष्ठ लक्ष्मी की उत्कृष्ट पदवी है,काम के यौवन का भारी मर्द है। रति प्रवाहों की सरिता है, हावभाव रूपी सम्पदाओं की क्रीड़ा है और सौंदर्य का अखण्ड और पवित्र पण है। रीतिकालीन काव्य में आध्यात्मिकता का ह्रास हुआ और भौतिक सौंदर्य चित्रण ध्येय बन गया। राधा-कृष्ण के चित्रण में आध्यात्मिक सौंदर्य कम और भौतिकता का प्राबल्य रहा। नारी या नायिका की तन-दीप्ति, रूपमाधुर्य, भावभंगिमा देखकर रीति कवि उसे सर्वश्रेष्ठ मान बैठे। इस काल में मांसल, बाह्य और हृदय आवर्जक चित्र प्राय: प्राप्त होते हैं। नवल अंगनाओं की छवि, वयसन्धि और मुग्धातत्व के वर्णन के प्रति सचेष्टता और वीर्य-विक्षोभक अंगों का मांसल सौंदर्य इस युग की विशेषता है। इस काल के कवियों ने नारी के दैहिक रूप की सज्जा, कामोज्जित अंगों का आकर्षण तथा किशोर-किशोरी अवस्था के रूप चित्र प्रस्तुत किए क्योंकि शृंगार का सार इसी अवस्था में प्रकट होता है।''

4. देव कवि की उक्ति भी इसी कथ्य का प्रमाण है। यथा—

"वाणी को सार
बखान्यो सिंगार
सिंगार को सार
किशोर-किशोरी।"

शृंगार प्रधान रसिकों का कहना है कि काव्य में शृंगार ही एकमात्र रस है, अन्य रस तो उसके सहयोगी हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार भोजदेव ने अपने "शृंगार प्रकाश" ग्रन्थ में इसकी पुष्टि की है। वास्तव में जगत में जो जैसा है, उसका वर्णन भी वैसा ही करने के लिए साहित्यकार बाध्य होता है, अन्यथा उसके साहित्य की मर्यादा नहीं रह जाती। ऐसी दशा में नारी रूप को रीतिकालीन कवियों ने जहां जैसा देखा-समझा वैसा ही अगर अपने काव्य में पिरोकर मानव समाज को लौटाया तो इसमें उनका क्या गुनाह? संस्कृत में कहा गया है—"कवय: किम् न पश्यन्ति?" यानी कवि क्या नहीं देखता? वह जिस चीज को देखता है, हृदय की दृष्टि से देखता है। वह असुन्दर चीज को भी सुन्दर बना सकता है। इसीलिए हिंदी साहित्य के कुछ आलोचक कहते हैं कि कवि अथवा साहित्यकार के पास असुन्दर से सुन्दर, सुन्दर से सुन्दरतर और सुन्दरतर से सुन्दरतम् बनाने की क्षमता होती है। कविवर रसरंग की रसीली भाव-व्यंजना का एक चित्र देखें :—

"सुषमा के सिंधु को
सिंगार कै समुन्दर तै
मथिके स्वरूप-सुधा
सुख सौ निकारे हैं।
करि उपचार-तासौ
स्वच्छता—निकारै
तामे सौरभ सुहागश्री
सोहास-रस डारे हैं।
कवि रसरंग ताको
सत्य जो—निकारै
तासौ राधिका-बदन
वेष विधि ने संवारे हैं।"

नारी के अंग प्रत्यंगों के चित्रण में रीतिकालीन कवियों की देन को भूला नहीं जा सकता। नारी के अनेकानेक मनोरम तथा हृदयग्राही चित्र वे मानस पटल पर रेखांकित कर गए हैं। नारी जीवन एवं नारी सौंदर्य पर गौर करते वक्त हमें स्मरण रखना चाहिए कि नारी अपने सौंदर्य तथा महत्व के कारण ही बहुत प्राचीन काल से मानव समाज का एक विशेष अंग के रूप में सुशोभित रही है। अब आइए, इसी प्रसंग के दौरान सीधी, सपाट और अत्यधिक खुली सड़क पर। कहा जाता है कि जब विरहिणी नायिका विरह-वियोग में

अत्यधिक तप्त हो जाती है तो वैसी अवस्था में जिसे भी वह देख लेती, वह जलकर भस्म हो जाता है। इसी को कहते हैं—"विरह-वियोगिनी की आग।" कृष्ण वियोग में तप्त राधा को यहां विस्मृत नहीं किया जा सकता तथा इसकी सजीव कल्पना महाकवि गंग की कलम से जो एकाएक फूट पड़ी थी, वह दर्शनीय है—

"गंग कहै वृन्दावन
चन्द बिन चन्दमुखी,
चंदहि निहारेगी-तो
चन्द जरि-जाइगो।"

वास्तव में संयोग के क्षणों में जो चीजें सुखदायिनी जान पड़ती हैं, वही वियोग के क्षणों में कष्ट कारक बन जाती हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर ब्रज के कुंज गोपियों के लिए जो शत्रु समान हो गए थे, उसे कौन कृष्ण-भक्त नहीं जानता? गोपियों की भावना महाकवि सूरदास के शब्दों में देखिए—"बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजै।" संस्कृत में कहा गया है—

"स्त्रियाश्चरित्रं
पुरुषस्य भाग्यम्
दैवो न जानाति
कुतो—मनुष्यः।"

नारी चरित्र बड़ा विचित्र होता है। लेकिन अब इसकी गहराई में अधिक न जाकर अब हम नारी के मादक एवं मोहक सौंदर्य का मूल्यांकन हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के फलक पर करना नितान्त आवश्यक समझते हैं। क्योंकि इस काल में भी नारी अंग-प्रत्यंगों का चित्रण कम नहीं हुआ पर इस संदर्भ से थोड़ा-सा अलग-हटकर यह भी स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि नारी विवश वेदना आज मानव समाज में जो व्याप्त है, उसे भी आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता। अन्य शब्दों में हम यों भी कह सकते हैं कि नारी जीवन विष-बेलीपर कुसुमित होते हुए किसलय की भांति है। मैथिली शरण गुप्त का ध्यान इस ओर गया था, तभी तो उन्होंने कहा—

"अबला जीवन हाय!
तुम्हारी यही कहानी?
आंचल में है —दूध
और आंखों में पानी।।"

गुप्त जी मुख्यतः हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति के सजग गीतकार थे। उनकी मान्यता है कि मानव जीवन सन्यास से नहीं, संघर्ष से संचालित होना चाहिए। वे मानवतावाद के प्रबल पोषक तथा समर्थक थे। खैर, जहां तक आज के युग में नारी शृंगार वर्णन का प्रश्न है तो इस पर कुछ वैज्ञानिक विचारकों का विरोध है। वे कहते हैं कि वैज्ञानिकों के हृदय पर कविता की छाप छोड़ना विशेषकर शृंगार रस की, पत्थर में छेद करने के समान है। यह सत्य है किन्तु पूर्ण सत्य नहीं क्योंकि जब तक मानव-तन में हृदय का योग है, उसे

स्नेह सिक्त करने हेतु काव्यरस का पुटपाक अति आवश्यक है। दरअसल मानव समाज को हृदय हीनता से बचाना काव्य का एक प्रमुख कार्य है। कहा जाता है कि शारीरिक और आत्मिक सौंदर्य ही आकर्षण के मूलभूत तत्व हैं। तो भला ऐसी अवस्था में नारी सौंदर्य का वर्णन जो प्राचीन काल से चला आ रहा है, अभी के युग में क्यों और कैसे नहीं हो सकता? दुनिया की सभी भाषाओं का सत्-साहित्य नारी रूप नारी चेष्टा और नारी भाव से ओतप्रोत है। आधुनिक युग तो नारी-जागरण का भी युग है। उसके सौंदर्य की सुन्दर अभिव्यक्ति शत-प्रतिशत हो रही है तथा आगे भी होती रहेगी। इसका कारण भी है। कहा गया है कि—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते,
रमन्ते—तत्र देवता:।"

छायावादी काव्य के प्रथम प्रर्वतक महाकवि जयशंकर प्रसाद ने भारतीय नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत कर नारी संसार को धन्य-धन्य किया। उन्होंने कहा कि —

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास, रजत, नग-पगतल में।
पीयुश-श्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।।"

अब मैं, दुनिया से पूछता हूं कि इससे बढ़कर नारी सौंदर्य भला और कैसा हो सकता है? अन्त में, भक्त शिरोमणि हित हरिवंश महाप्रभु की पंक्तियों को प्रस्तुत करते हुए मैं, अपना कथ्य समाप्त करता हूं—

"जो जाको
प्यारो लगे,
सो सुख लेहु अघाय।"

अधिशासी वित्त एवं लेखा विभाग (प्रशासन) बोकारो स्टील प्लांट, बोकारो।

संदर्भ-सूची :—

1. काव्य में नारी, निबंध
2. तुलसी और नारी, निबंध, ले. डा. नगेन्द्र
3. आस्था के चरण, पृष्ठ-389
4. हिंदी काव्य में उरोज सौंदर्य, पृष्ठ-42

निजीकरण और हिंदी

—डॉ. सोहन शर्मा

''निजीकरण'' और हिंदी का प्रश्न मूलत: आर्थिक—व्यवहार में आने वाले बदलाव में भाषा—व्यवहार की भूमिका को समझने का प्रश्न है। इसलिए इस विमर्श की शुरूआत में, संक्षेप में ही सही, यह जान लेना उपयोगी होगा कि सामाजिक, संरचना में आर्थिक तथा वित्तीय व्यवस्थाओं एवं उत्पादन व वितरण पद्धतियों को बदलने वाली प्रवृत्तियां कौन सी हैं ? हमारे यहां सन् 1991-92 में नई आर्थिक नीति को अपनाए जाने के साथ ही आर्थिक-परिवेश में बदलाव की एक प्रक्रिया प्रारंभ हुई। इस बदलाव में मुख्यत: तीन प्रमुख प्रवृत्तियां रही हैं। ● उदारीकरण ● भूमंडलीकरण ● निजीकरण या विनिवेश इसके साथ ही बुनियादी न सही, पर प्रक्रियागत प्रवृत्ति है— मशीनीकरण विशेषकर कंप्यूटरीकरण। इन प्रवृत्तियों ने आर्थिक—परिवेश ही नहीं भारतीय समाज की संपूर्ण संरचना को प्रभावित किया है।

इन प्रवृत्तियों को जान लें।

- ''आर्थिक उदारीकरण'' का मतलब है अर्थव्यवस्था में खुलापन लाना। इसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था पर से कुछ नियंत्रण हटाए गए या कम कर दिए गए। राज्य के बजाए बाजार, आयात—प्रतिस्थापना के बजाए निर्यात—प्रोत्साहन तथा करों की दरें कम करने एवं नियंत्रणों की जगह विनियंत्रणों पर जोर दिया गया। उदारीकरण में मुख्य रूप से आयात—निर्यात व्यापार एवं देशी कारोबार में भी, माल मंगाने—भेजने, उद्योग—स्थापना आदि से संबंध कुछ रियायतों (लाइसेंसों की अनिवार्यता समाप्त करना एवं एक्साइज तथा कस्टम ड्यूटी की छूट आदि) का समावेश है। साथ ही, कुछ एक प्रक्रियागत औपचारिकताओं को समाप्त किया गया है। उदारीकरण का नवीनतम चरण है वाणिज्यमंत्री मुरासोली मारन द्वारा इस वर्ष घोषित नई आयात—निर्यात नीति जिसके अंतर्गत शुरूआत में 714 वस्तुओं पर से तमाम आयात प्रतिबंध हटा लिए गए हैं। साथ ही चीन की तर्ज पर विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने की घोषणा भी की गई है, इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों में सौ फीसदी विदेशी निवेश की छूट होगी। उदारीकरण का लक्ष्य है— निवेशकों और उद्यमियों को आकर्षित करना।
- ''भूमंडलीकरण'' के अंतर्गत भारतीय—अर्थव्यवस्था को विश्व—अर्थव्यवस्था से जोड़ने के लिए इसे अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा हेतु खोला गया। ''भूमंडलीकृत गांव'' (ग्लोबल विलेज) का निवासी बनने की मंशा में इसे भूमंडलीकरण कहा गया। इसके तहत विदेशी व्यापार, विदेशी टेक्नालॉजी तथा विदेशी विनियोग बढ़ाने पर बल दिया गया। इसमें मुक्त बाजार व्यवस्था की संकल्पना है। अपने उत्पादों के लिए दुनिया के

विभिन्न देशों के बाजार में पैठ बनाने की सुनियोजित आर्थिक कार्यशैली इसकी बुनियाद होती है और बाजार—प्रभुत्व स्थापित करने में प्रतियोगिता एक मूल तत्व है। स्पर्धात्मक बाज़ार भूमंडलीकृत अर्थ व्यवस्था की पहचान है। यह जानना दिलचस्प होगा कि यह अभिव्यक्ति बहुत पुरानी नही है। अमरीका की साप्ताहिक पत्रिका 'इकॉनोमिस्ट' ने 4 अप्रैल, 1959 के अंक में इटली द्वारा आयात की जाने वाली कारों के संदर्भ में "ग्लोबलाइज्ड कोटा" की बात की थी। फिर 1961 में वेबस्टर डिक्शनरी में इसे परिभाषित किया गया। अब तो यह विश्वव्यापी आर्थिक गतिविधियों का केन्द्रीय शब्द है। भूमंडलीकरण की पारिभाषिक पेचीदगियों में न भी जाएं तो मोटा सा अर्थ यह बनता है कि विश्व के विभिन्न देशों में हमारी वित्तीय एवं व्यावसायिक गतिविधियों का व्यापक प्रसार जाहिर है कि इस प्रक्रिया में हम दूसरे देशों के संपर्क में आएंगे, और दूसरे देश हम से संपर्क करेंगे।

- वित्तीय-आर्थिक परिवेश को बदलने वाली तीसरी प्रवृत्ति "निजीकरण" है। निजीकरण के दो अर्थ हैं। एक, व्यावसायिक एवं वित्तीय कारोबार के लिए निजी कंपनियों को अनुमति देना। दूसरे, सार्वजनिक संस्थानों के स्वामित्व में जनता की सहभागिता का समावेश कर के उन्हें सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र के दायरे से बाहर लाना। जहां तक निजी कंपनियों को छूट देने का सवाल है उसमें कोई बात अस्पष्ट नहीं है। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों में जनता की सहभागिता का समावेश करते हुए किस सीमा तक उसे सरकारी क्षेत्र के संस्थान होने के दायरे से बाहर लाया जाएगा इसके बारे में अभी तक कोई बात स्पष्ट रूप से उभर कर नहीं आई है। बीमा के क्षेत्र का उदाहरण हमारे सामने है, जिसमें मल्होत्रा समिति की रिपोर्ट के अनुसार सरकार और आम जनता की सहभागिता क्रमशः 51% और 49% शेयरधारिता की है। लेकिन बावजूद इसके, बीमा संस्थान अभी भी "सार्वजनिक क्षेत्र का संस्थान" है। कई बैंकों ने इक्विटी बाजार में प्रवेश कर ही लिया है, पर वे अभी भी सार्वजनिक क्षेत्र के दायित्व से मुक्त नहीं है। सन् 2002 तक संचार के क्षेत्र विशेष में वी.एस.एन.एल. के एकाधिकार को समाप्त करने की बात अभी-अभी आई है पर, तब उसका स्वरूप क्या होगा इस पर टिप्पणी करना जल्दबाजी होगा। निजीकरण के पक्ष में प्रमुख तर्क यह दिया जाता है राज्य के स्वामित्व वाले उद्योग अक्सर घाटे में रहते है। निजी स्वामित्व के दायरे में लाने से उनकी कार्यकुशलता बढ़ जाती है और वे मुनाफा देने लगते हैं। पर इस तर्क की विश्वसनीयता संदिग्ध है। कुछ दशकों पूर्व इंग्लैड में "ब्रिटिश गैस" तथा "ब्रिटिश टेलीकॉम" जैसे उद्योगों का निजीकरण हुआ। उस पर 21 अरब डालर खर्च हुए। फांस में 10 अरब डालर के खर्च पर कई बैंकों, बीमा कंपनियों व वित्तीय कंपनियों का निजीकरण हुआ। पर इस "निजीकरण" से ये संस्थान लाभदायी नहीं बन सके। बजट-सत्र में वित्तमंत्री ने संकेत दिया था कि निजीकरण के बाद भी सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों के "सार्वजनिक-स्वरूप" में कोई बुनियादी बदलाव नहीं होगा अर्थात् एक अर्थ में "रेग्युलेटेड" या विनियंत्रित रहेंगे ही। बैंकिंग का एक

उदाहरण हम देना चाहेंगे। सन् 1991 में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के बाद देश में निजी क्षेत्र के 9 बैंक खुले हैं इनमें इंडस बैंक, ग्लोबल ट्रस्ट बैंक तथा यू.टी.आई.बैंक व आई.सी.आई. सी. आई. बैंक मुख्य हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की तरह ही प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र (कृषि, लघु उद्योग आदि) के दायित्व इन पर भी लागू हैं तथा इन्हें एस.एल.आर. (सांविधिक नकदी अनुपात) के प्रावधान का पालन करना होता है। अर्थात् पूरी तरह "डीरेग्यूलेटेड" नहीं हैं। 3 विदेशी बैंक भी खुले हैं। बैंक ऑफ सीलोन (श्रीलंका) सियाम कमर्शियल बैंक (थाईलैंड) तथा बांग्ला देश इन पर भी ये प्रावधान लागू हैं तथा वे रिजर्व बैंक की नीतियों का पालन करने को बाध्य हैं। अब इस तरह का निजीकरण आया तो हिंदी के प्रयोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की कोई आशंका नहीं की जानी चाहिए। बहरहाल, जहां तक राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग का प्रश्न है और उसकी संवैधानिक स्थिति क्या होगी इसका निर्णय संसद को करना होगा। अभी से आशंकाएं पालने का कोई कारण नहीं है।

बहरहाल, सन् 1991-92 से नई आर्थिक नीतियों की शुरूआत के साथ उदारीकरण, भूमंडलीकरण तथा निजीकरण की जो प्रक्रिया चली उसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं, और परिवर्तनों की यह गति दिनों-दिन तेज होती जा रही है। आने वाले दशकों में परिवर्तन की यह प्रक्रिया तीव्रतम होगी। आर्थिक क्षेत्र के ये परिवर्तन साहित्य, कला, चिंतन-दर्शन व समूचे सामाजिक-सांस्कृतिक सोच के साथ भाषिक-व्यवहार (लिंग्विस्टिक बिहेवियर) को भी बदल लेंगे।

हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की भूमिका भी अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप होगी। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि भाषाओं की भूमिका मुख्यत: आर्थिक परिवर्तनों को आत्मसात करने और उनके अनुरूप अपने आप को ढालने की होगी। इस प्रक्रिया में भाषाओं का व्यवहार क्षेत्र व्यापक होगा तथा भाषिक स्वरूप में ऐसे बदलाव आएंगे जिसकी कल्पना संभवत: पारम्परिक व्याकरण व भाषा विज्ञान के विद्यमान अनुशासनों में नहीं की गई है।

प्रवृतिगत परिवर्तन :

यह परिवर्तन दो प्रकार के होंगे। एक होगा प्रवृत्तिगत परिवर्तन. **प्रवृतिगत परिवर्तन :** प्रवृतिगत परिवर्तन में आर्थिक, वित्तीय एवं उत्पादन व्यवहार में आने वाले बदलाव कार्यगत या "फंक्शनल" होंगे। संस्थानों के कार्य और भी व्यापक और विस्तृत हो जाएंगे। पारम्परिक अर्थव्यवस्था का स्वरूप एकदम बदल जाएगा। परिवर्तन के फलस्वरूप उभरकर आने वाली कुछ प्रवृत्तियों का उल्लेख करना यहां समुचित होगा। जैसे ● ऊर्जा, जन-परिवहन, संचार तकनीक-विज्ञान एवं बुनियादी-उपकरण में निजी उद्यमों/संस्थानों एवं विदेशी कंपनियों का प्रवेश ● मुद्रा बाजार, पूंजी बाजार, प्रतिभूति बाजार, साख बाजार एवं विदेशी विनिमय बाजार का अधिक से अधिक एकीकरण ● ढांचागत क्षेत्र का निजीकरण एवं व्यापारीकरण ● विदेशी पूंजी का भारत में अधिकाधिक निवेश और भूमंडलीकरण के अन्तर्गत विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ने के प्रयासों का सघन होना।

प्रवृतिगत परिवर्तन अर्थात् कार्यों में परिवर्तन के साथ संरचनागत विकास में भी कुछ बदलाव आएंगे इसमें से कुछ मुख्य बातों का उल्लेख करें।

संस्थानों के निदेशक मंडल में तकनीकी विशेषज्ञों, व्यावसायिक-वित्त विशेषज्ञों, वित्तीय संस्थाओं एवं आर्थिक कार्याकलापों से जुड़े निवेशकों का समावेश होगा। शेयरधारकों के प्रतिनिधियों के रूप में भी वित्त-विशेषज्ञों एवं प्रबंधन के व्यवसायिक जानकारों को प्राथमिकता मिलेगी। संसाधन प्रबंधन तथा परिचालन कार्यों में स्वायत्ता का दायरा विस्तृत होगा।

इन प्रवृतिगत परिवर्तनों का एक मात्र और प्रमुख लक्ष्य होगा अधिकाधिक लाभ अर्जित करना। दूसरे शब्दों में कहें तो तमाम प्रवृतिगत परिवर्तन लाभदायकता पर केन्द्रित होंगे।

स्वरूपगत परिवर्तन :

पिछले एक दशक से परिवर्तनों की जो प्रक्रिया शुरू हुई है उसमें इन प्रवृतियों का उभार साफ-साफ दिखाई देने लगा है। निकट भविष्य में परिवर्तन के प्रक्रिया के तीव्रतम होने के समानांतर भारतीय अर्थव्यवस्था में स्वरूपगत परिवर्तन भी होंगे। क्योंकि प्रवृतिगत परिवर्तनों का लक्ष्य प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में अधिकाधिक लाभ अर्जित करना होगा, इसलिए अधिकाधिक लाभ अर्जित करने के लिए स्वरूपगत परिवर्तन भी अनिवार्य हो जाएंगे। संभावित स्वरूपगत परिवर्तन के कुछ मुख्य मुद्दे इस प्रकार होंगे।

●प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में बाजार एक मुख्य घटक के रूप में उभरेगा और स्वरूपगत परिवर्तन अपने आप को अधिक से अधिक बाजार व्यवस्था के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करेंगे
●देश के करोड़ों उपभोक्तओं तक उत्पाद एवं सेवाओं को पहुंचना लाभप्रदता के लिए आवश्यक होगा और इसके लिए संस्थान ग्राहकों की रूचि के प्रति अधिकाधिक संवेदनशील होते जाएंगे। उपभोक्तवाद की वृद्धि के साथ-साथ उपभोक्तओं की पसन्द में भी तेजी से और भारी बदलाव होंगे। अतः उपभोक्ताओं की आवश्यकता के अनुसार व्यवसायिक संस्थानों को प्रत्येक स्तर पर परिवर्तन के लिए न केवल उत्सुक बल्कि तैयार रहना पड़ेगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूपगत परिवर्तन प्रवृतिगत परिवर्तनों के पूरक होंगे।

लाभप्रदता परिवर्तन का मूल सरोकार होगा :

उपरोक्त प्रवृतिगत एवं स्वरूपगत दोनों ही प्रकार के परिवर्तनों का मूल सरोकार लाभप्रदता होगा। भूमंडलीकरण की अवधारणा के साथ विश्व-अर्थव्यवस्था का अंग बनाने की आकांक्षा ने हमारी अर्थव्यवस्था को उदार बनाते हुए ''निजीकरण'' को प्रोत्साहित किया है। सरकारी स्वामित्व धीरे-धीरे क्षीण होगा। ''डीरेग्युलेटेड इकॉनमी'' में नियंत्रणों की समाप्ति के साथ ही निजी एवं सार्वजनिक व्यावसायिक संस्थान परम्परागत कार्य करने के साथ-साथ नए कार्य क्षेत्रों में प्रवेश करेंगे। सार्वजनिक क्षेत्र के कई बैंक बीमा-व्यवसाय में आने की तैयारी में है, इंजिनियरिंग व लुब्रिकेशन के क्षेत्र में कार्यरत संस्थान परिवहन व होटल-व्यवसाय में उतर सकते हैं। ''उदारीकरण'' तथा ''निजीकरण'' के कारण संस्थानों को विदेशी और निजी कंपनियों के साथ कड़ी प्रतिस्पर्धा

का सामना करना होगा। अधिकाधिक लाभ अर्जित करने वाले संस्थान ही इस स्पर्धा में टिक सकेंगे। लाभप्रदता के लिए उत्पादकता एवं कुशलता अर्जित करनी होगी। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि ये दोनों ही प्रकार के परिवर्तन लाभप्रदता, कुशलता और उत्पादकता के तीन बुनियादी एवं महत्वपूर्ण लक्ष्यों की उपलब्धि पर केन्द्रित होंगे। इन लक्ष्यों की उपलब्धि की ओर अग्रसर होते हुए ये परिवर्तन जो "रोड़मैप" तैयार करेंगे उस पर भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की पूरी अवधारणा आधारित होगी।

सूचना प्रौद्योगिकी लाभप्रदता के लिए अनिवार्य होगी :

तीव्रतम गति (हाई स्पीड) और **दक्षता** (एफीशिएंसी) ये दो अभिव्यक्तियां अगली शताब्दी की लाक्षणिक विशेषताएं होंगी। तमाम संस्थागत कार्यकलापों की सफलता अर्थात् लाभप्रदता-अर्जन के लिए यह आवश्यक होगा कि सारे कार्य अत्यधिक तेज गति और दक्षता से निपटाए जाएं।

प्रतिस्पर्धा के माहौल में लाभप्रदता के लिए यह आवश्यक होगा कि हर स्तर पर शीघ्र और सक्षम कारोबारी निर्णय लिए जाएं तथा समस्त कार्य निष्पादन को गुणवत्तापूर्ण बनाया जाए। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि संस्थान की हर इकाई प्रबंधन-सूचना-प्रणाली तथा कार्मिक--सूचना-प्रणाली से लैस हो। बजट-निष्पादन व लागत-मूल्य दक्षता के साथ प्रशासन के सभी स्तरों पर आवश्यक सूचनाएं उपलब्ध हों। यह सूचना-भंडारण ही शीघ्र एवं सक्षम कारोबारी निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि करेगा, इसके लिए विकसित सूचना प्रौद्योगिकी को अपनाना अनिवार्यता होगी। संस्थानों के पास आधुनिकतम सूचनातंत्र एवं इलेक्ट्रोनिक मीडिया, कप्यूटर एवं आधुनिकतम लेखायंत्रों का होना आवश्यक होगा ताकि उनका कार्य पूरी दक्षता से सम्पन्न हो और गुणवत्तापूर्ण उत्पाद या सेवाएं सरलतम रूप में, तुरंत और हर स्थान पर उपलब्ध कराई जा सकें।

आने वाले समय में सूचना प्रौद्योगिकी व्यावसायिक कार्यशैली को निर्धारित और विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। कारपोरेट ग्राहक, बड़े औद्योगिक संस्थान और महत्वपूर्ण ग्राहकों की यह अपेक्षाएं होंगी कि वे कम लागत पर बेहतर उत्पाद और सेवाएं पा सकें। इन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए संस्थागत संरचना को बहुस्तरीय परस्पर सम्बद्धता (मल्टी लेयर इंटरक्नेक्टिविटी) और बहुआयामी सम्प्रेषण (मल्टी डाइमेंशनल कम्यूनिकेशन) में सक्षम बनाना होगा।

अगली सदी "ज्ञान शताब्दी" के रूप में मूर्त होगी। उसमें उत्पादन के पुराने तरीकों जैसे भूमि, श्रमिक तथा पूंजी का स्थान सूचना-प्रौद्योगिकी ले लेगी। एक प्रकार से सूचना प्रौद्योगिकी अगली शताब्दी की नियंत्रक, संचालक और नियामक शक्ति होगी। सारे कार्यकलाप कंप्यूटर आधारित विकसित प्रौद्योगिकी पर निर्भर होंगे। अगले विकसित चरण में कार्पोरेट वाइड एरिया नेटवर्क (डब्ल्यू. ए. एन.) का समावेश होगा। नयी शताब्दी "ई-कामर्स" की शताब्दी होगी।

इस संभावित परिदृश्य में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की भूमिका का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष विकसित प्रौद्योगिकी को आत्मसात करने का होगा।

भाषा की अहम भूमिका : विकसित प्रौद्योगिकी को आत्मसात करना

विकसित प्रौद्योगिकी को आत्मसात करने की प्रक्रिया में ''पेपर लेस आफिस'' का स्वरूप उभरने की संभावनाएं हैं। ''कागजात रहित कार्यालय'' के संभावित स्वरूप में कागज दिनोंदिन कम हो जाएंगे। आज भारी-भारी लेजर हट गए हैं। कल सूचना-संप्रषेण की नई पद्धतियों के अंतर्गत लंबे-लंबे परिपत्रों एवं कार्यवृत्तों का स्थान फ्लापी और डिस्क ले लेगी। कार्यालयीन कागजातों में विवरणात्मक भाषा का उपयोग कम होगा और संक्षिप्त व सांकेतिक अभिव्यक्तियों एवं कूट-वाक्यों का उपयोग बढ़ेगा। क्रियापद और कालबोधक शब्दों से रहित सुनिश्चित संक्षिप्ताक्षरों, व्यंजक एवं सारगर्भित वाक्यांशों/अभिव्यक्तियों के निर्माण की प्रक्रिया में पारंपारिक व्याकरण की मर्यादा का अतिक्रमण करना होगा। विकसित प्रौद्योगिकी की मांग के अनुरूप-भाषा-व्यवहार की जितनी संभावना बचेगी उसके उपयुक्त भाषिक-संरचना को ढालना भी इस चुनौती का एक पक्ष है।

कंप्यूटर के माध्यम से किसी भी भाषा के प्रयोग के प्रसंग में भाषा के मानकीकरण का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। यह महत्वपूर्ण इसलिए भी है कि भाषा में वर्णाकृति, शब्दाकृति एवं कुंजीपटल का मानकीकरण होने से भाषा को एकरूपता प्राप्त होती है तथा भाषा की अराजकता पर काबू पाया जा सकता है। हिंदी में भी वर्णाकृति, शब्दाकृति और कुंजीपटल का मानकीकरण आवश्यक होगा।

वर्णाकृति और शब्दाकृति में मानकीकरण के साथ कुंजीपटल में मानकीकरण आसान हो जाएगा। देवनागरी लिपि उच्च ध्वन्यात्मक क्षमता से सम्पन्न है। अत: इस मानकीकरण में कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। हां, इस प्रकिया में यह आवश्यक होगा कि कंप्यूटर वैज्ञानिक और भाषा-वैज्ञानिक पूरे तालमेल के साथ मिलकर कार्य करें, तब यह देखना दिलचस्प होगा कि सूचना तकनीक के व्यवहार से हिंदी का एक ऐसा रूप विकसित होगा जो सूचना-संचार में पूरी तरह सक्षम होगा।

यह प्रकिया भाषा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया होगी।

भाषा के आधुनिकीकरण का प्रश्न

नए ज्ञान-विज्ञान को अभिव्यक्ति देने की प्रक्रिया में किया जाने वाला भाषिक परिवर्तन ही भाषा का आधुनिकीकरण है। यह एक विडंबना है कि लंबे अरसे तक अंगेजी के प्रयोग से उपजी मानसिक दासता और नव-औपनिवेशिक चिंतन ने हमारी भाषा-योजना (लैंग्वेज-प्लानिंग) की पूरी प्रकिया को बाधित किया है।

भाषा-आयोजना की सहज व स्वाभाविक प्रक्रिया में पहले मौलिक चिंतन, फिर नामकरण या शब्द निर्माण, फिर उस शब्द का व्यवहार, उसकी सामाजिक स्वीकृति और अंत में शब्दकोश निर्माण व मानकीकरण की बात आती है। अनुवाद की मानसिकता से ग्रस्त हम इस दिशा में उल्टे चल रहे हैं ''शब्दकोश'' देखने से शुरू करते हैं.. . . .मौलिक सोच लगभग बंद है। ताजगी भरी अभिव्यक्तियों की तलाश अपवादस्वरूप ही कहीं दिखाई देती है। यह बात सरकारी या निजी क्षेत्र

89 HA/2001—7

से जुड़ी अनुवादकों की फौज पर ही नहीं, एड-एजेंसियों तथा मीडिया जगत के ''इलीट'' कहे जाने वाले फ्रीलांसरों और कॉपी रायटरों पर भी लागू होती है। भाषा विज्ञान के अकादमिक क्षेत्र की चिंता का विषय तो शायद यह है भी नहीं।

भारत जैसे बहुभाषी देश के ''भाषिकीय एटलस'' में करीब सत्तर प्रमुख भाषाओं और बोलियों का समावेश है। इनमें से पैंतीस भाषाएं, बोलियों-उपबोलियों सहित, तो उन राज्यों की हैं जहां हिंदी राज्यभाषा भी है। अहिंदी भाषी राज्यों की राज्यभाषाओं व क्षेत्रीय बोलियों में भी समान शब्दों का एक भंडार है। यह सम्पन्न भाषिक विरासत हिंदी के आधुनिकीकरण का आधार बन सकती है। भाषाविकास में व्याकरण के बजाए शब्द भंडार (लेक्सिकॉन) की संपन्नता अधिक उपयोगी होती है।

जितने विविध क्षेत्रों में भाषा व्यवहार होगा, जितनी अधिक भौगोलिक सीमाओं से उसका संपर्क होगा, उसका विकास भी उतना ही विविध और व्यापक होगा। अपने ही देश की विभिन्न भाषाओं के शब्दों को आत्मसात करना, विभिन्न विदेशी भाषाओं के अंतर्राष्ट्रीय परिभाषिकों को अपनाना तथा विदेशी शब्दों का भारतीयकरण, ये तीन प्रमुख पद्धतियां हैं जो किसी भी बहुभाषी समाज में एक अंतर्भाषा (इंटर-लैंग्वेज) और संपर्क भाषा (लिंग्वाफ्रांका) के विकास का आधार बनती हैं। यही भाषा अंततः आधुनिक होती है।

भारत के बहुभाषी, बहुधर्मी और बहुराजनीतिक सामाजिक ढांचे में अंतर भारतीयता या राष्ट्रीय एकता निश्चित रूप से अंग्रेजी के माध्यम से प्रतिष्ठित नहीं हो सकती। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी ने अब तक जो संप्रेषण क्षेत्र बनाया है उसे विभिन्न भारतीय भाषाओं की लिपियों का देवनागरीकरण करते हुए और व्यापक बनाया जा सकता है। यह बात विवादस्पद हो सकती है, पर मेरा मानना है कि सद्भावनापूर्ण वातावरण निर्माण की ईमानदाराना कोशिशों के साथ इस दिशा में बढ़ा जा सकता है। प्रकिया थोड़ी लंबी हो सकती है।

यह बात कहते हुए महानगरों के चौराहों पर लगे ''Isaka Maza hi Kuchh Aur hai'' जैसे होर्डिंग मेरे ध्यान में हैं। लेकिन भाषा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में ऐसे प्रयत्न किसी साझा भाषिक विरासत के अभाव में सीमित एवं अल्पकालिक उपयोगिता से आगे नहीं जाते। मुंबई में भी ऐसे होर्डिंग मरीन लाइंस या वार्डन रोड पर मिलेंगे। परेल, लालबाग या जोगेश्वरी में नहीं। भारत में जहां मुश्किल से तीन प्रतिशत लोग अंग्रेजी जानते हैं, वहां देवनागरी का रोमनीकरण करने के ऐसे प्रयास बाजार-पैठ की एक विवश कोशिश तो हो सकती है,

''भाषा-आयोजना'' में इनकी कोई अहमियत नहीं होती।

यह एक मिथ है कि अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। फ्रांस, जर्मनी और जापान जैसे विकसित देशों ने अपनी-अपनी भाषा में उन्नत प्रौद्योगिकी को विकसित और आत्मसात किया है।

भारत में भी विकसित प्रौद्योगिकी को जन-सामान्य तक पहुंचाने का प्रश्न महत्वपूर्ण है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को प्रौद्योगिकी का माध्यम बनाने के प्रति किसी भी प्रकार की उदासीनता का अर्थ है ज्ञान-विज्ञान और तकनीक के लाभ से जन सामान्य को वंचित रखना।

इसका दूसरा और महत्वपूर्ण अर्थ यह भी होगा कि व्यापक उपभोक्ता बाजार के दोहन से होने वाले लाभों से अर्थव्यवस्था को वंचित रखना।

व्यावसायिक भाषिक मुहावरा

उदारीकरण के इस दौर में लाभप्रदता और उत्पादकता वृद्धि के लक्ष्य के अनुरूप एक व्यावसायिक भाषा के रूप में हिंदी को विकसित करना होगा। हिंदी का यह व्यावसायिक रूप साहित्य के सौंदर्यशास्त्रीय, शिक्षा के अकादमिक, पत्रकारिता के विश्लेषणात्मक तथा विद्यमान ढांचाबद्ध तथा मूलतः अनुवाद आधारित कार्यालयीन-प्रशासनिक भाषिक मुहावरे से अलग होगा।

हमारी सामाजिक आवश्यकताओं और जीवन की व्यवस्थाओं से जुड़े इस व्यावसायिक मुहावरे में मिलों-फैक्ट्रियों में प्रयुक्त सहज प्रयोजनसिद्ध शैली, न्यायालयों की कानूनी और कार्यालयों की प्रशासनिक भंगिमा, जनसंचार के माध्यम के रूप में पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो-दूरदर्शन की संबोधिनी मुद्रा, व्यापार-व्यवसाय, मंडियों, सर्राफों और वित्तीय संस्थानों के कार्य-व्यवहार के उपयुक्त विविध भाषिक रूपों का समावेश है।

इस व्यवसायिक मुहावरे को उपलब्ध करने के प्रयत्नों में एक ही भाषा के कई प्रभेद हो सकते हैं, और इन सभी में संप्रेषण के स्तर और विषयवस्तु की भिन्नता के साथ-साथ जिसे संबोधित किया जा रहा है उसकी आवश्यकता, रूचि और शैक्षणिक-बौद्धिक क्षमता की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। अब तक इन बातों को नजरअंदाज करते हुए व्यावसायिक हिंदी लेखन और संप्रेषण के सवाल को केवल भाषा की सरलता (याने आमफहम या प्रचलित शब्दों का प्रयोग) तक सीमित कर दिया जाता रहा है। इससे खड़ी बोली के आधुनिकीकरण और उसे एक व्यावसायिक संप्रेषणीय मुहावरा देने में काफी दिक्कतें पैदा हुई हैं। राजस्थान में जहां मेवाड़ी, मेवाती और शेखावाटी की लोक-बोलियों की एक परंपरा है, उत्तर प्रदेश में जहां फौजी बेरकों का उर्दू प्रधान लहजा और नवाबी नफ़ासत की नज़ीर है या मुंबई में जहां हिंदी का एक अलग ही मिजाज है वहां "पधारने" "तशरीफ लाने" और "इधर कू आओ" में सरलता के निर्धारण का क्या तरीका हो ! बहुभाषी और सामाजिक संस्कृति वाले भाषिक परिवेश में "सरलता" का सामान्यीकृत रामबाण नुस्खा नहीं हो सकता है। न्यायालयों की विशिष्टि शैली जिसमें वाक्य शुरू होने पर चार शब्दों के बाद अल्प विराम, फिर छोटा कोष्ठक, बड़ा कोष्ठक फिर दो-चार अल्पविराम और तब दस पंक्तियों के बाद पूर्णविराम। यह शैली औपनिवेशिक दौर की न्याय-व्यवस्था व प्रशासन से हमें विरासत में मिली है। लेकिन इस देश में अंग्रेजी के पहले विधि, प्रशासन, भूमि-बंदोबस्त और उद्योग व्यवसाय जैसे क्षेत्रों के कार्यकलाप हमारी अपनी भाषाओं में अभिव्यक्ति पाते रहे हैं, जोधपुर और कानपुर जैसे हिंदी भाषी केन्द्रों में ही नहीं बड़ौदा तथा हैदराबाद जैसी रियासतें बारहवीं-तेरहवीं शती में भी अपना राजकीय, औद्योगिक-वित्तीय कार्य हिंदी तथा स्थानीय भाषाओं के माध्यम से बखूबी चलाती रही है, मुगलकाल की कमोबेश केन्द्रीयकृत शासन-व्यवस्था ने अरबी-फारसी उर्दू के उपयोग से सामाजिक-व्यवहार-क्षेत्र के भाषिक मुहावरे को किसी हद तक अखिल भारतीय स्वरूप देने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई है, एक दूसरे अर्थ में आज हमारी हिंदी फिल्में यह काम कर रही हैं।

बहुत संपन्न और बहुरंगी भाषिक परंपरा है हिंदी के पास, जिसकी बुनियाद पर ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न विधाओं को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य अर्जित करनी होगी। इस प्रक्रिया मे भाषा के समाजशास्त्र के इस सूत्र को साथ लेकर चलना होगा कि भाषा के विकास का मुद्दा उसका प्रयोग करने वालों की भाषिक-स्थिति ही नहीं उनकी सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि से भी जुड़ा होता है। इस विवेक के अभाव में जी टी वी के समाचारों की हिंदी सुनने को मिलती है। शब्दों से परहेज किसे है! तमाम देशी-विदेशी भाषाओं के वे शब्द जो हमारी भाषाओं में रच बस गए हैं, अपनाए जाने चाहिए, लेकिन, वाक्यों के क्रियापदों को हिंदी कर देने मात्र से हिंदी नहीं हो जाती। यह भाषिक-सरलता नहीं, भाषिक अराजकता (लिंग्वस्टिक एनार्की) है जो इतना भी नहीं समझ पा रही है कि चंद बड़े शहरों के एक छोटे से अंग्रेजी जानने वाले तबके को छोड़कर जनसमान्य के लिए यह एक निरर्थक एकालाप है।

बाजार के तकाजे

उदारीकृत बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में व्यवसायिक सम्प्रेषण अर्थात् ''प्रोफेशनल कम्युनिकेशन'' एक अनिवार्यता होगी। व्यापक जनसमुदाय को संबोधित करने के व्यावसायिक सम्प्रेषण की प्रक्रिया में आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा देश के बड़े औद्योगिक घरानों के विज्ञापन-होर्डिंग राजमार्गों पर ही नहीं कस्बों और छोटे शहरों तक पहुंच रहे हैं। गौरतलब यह है कि ये विज्ञापन-होर्डिंग अधिकतर हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में हैं।

इलेक्ट्रानिक मीडिया में उपभोक्ता वस्तुओं के हिंदी में दिए जाने वाले विज्ञापनों में इज़ाफ़ा हो रहा है। दूरदर्शन आज 90% जनता तक पहुंच गया है, हिंदी के माध्यम से टी.वी. को होने वाली आय 60% बढ़ गई है। ''इंडिया टुडे'' जैसी ड्राइंगरूम-सजाऊ पत्रिकाएं हिंदी में भी निकलने लगी हैं। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं/अखबारों को हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में दिए जाने वाले विज्ञापनों में पिछले दो वर्षों में 65% की वृद्धि हुई है। ये कुछ संकेत हैं कि इस देश के हिंदी जानने वाले एक बड़े उपभोक्ता वर्ग तक देशी-विदेशी सभी व्यावसायिक संस्थान पहुंचना चाहते हैं। निश्चित रूप से हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के व्यवहार का बड़ा क्षेत्र सामने है।

बाजार को संबोधित करने की प्रक्रिया में हिंदी तथा भारतीय भाषाओं को व्यावसायिक तकाजों के अनुरूप एक भाषिक मुहावरा गढ़ना होगा। हिंदी इस कौशल का कितना और कैसे विकास करेगी यह इसकी सृजनात्मक सामर्थ्य के लिए एक कसौटी है।

''उत्पाद'' या ''सेवा'' का नामकरण ''टाइटन'' ''अपोलो'' या ''हरक्यूलिस'' की तर्ज पर ही क्यों हो। ''देवेश'' ''आदित्य'' या ''महाबली'' क्यों न हो। हमारे पौराणिक-मिथकीय चरित्रों, व्यक्तित्वों एवं प्रतीकों-बिंबों की भारतीय जनमानस में एक चिर-परिचित छवि है जो ''उत्पाद'' या ''सेवा'' के गुणधर्म व उसकी खूबियों के साथ उपभोक्ता से आत्मीयता बनाने में सहायक होती है। यह आत्मीयता व्यवसाय बढ़ोतरी का आधार बनती है। ग्रीक-रोमन मिथकीय चरित्रों की अर्थ व्यंजना से कितने लोग वाकिफ हैं ? आखिर उपभोक्ता से आत्मीयता बनाना, उसका विश्वास हासिल करना, प्रचार व विपणन के तमाम प्रयत्नों का मूल सरोकार यही तो है। नामकरण के साथ सभी तरह के प्रचार-साहित्य में भी इसके प्रति सजगता बरती जाए तो ''ब्रांड-स्टेब्लिश'' करना अधिक सहज होगा।

विज्ञापन-फिल्मों के पाश्चात्य परिवेश में ''मैकनॉज गोल्ड'' की शैली में परोसे जाने वाले उत्पाद भारतीय उपभोक्ता पर कितना प्रभाव छोड़ते हैं यह भी विचारणीय है।

''उत्पाद-सेवा'' शुरू करने से पूर्व का अभियान, बाजार-सर्वेक्षण और उत्पाद को बाजार में ले आने के बाद बाजार परिणामों का आकलन विपणन-नीति की सफलता का आधार होता है। देश के पच्चीस राज्यों (संघ शासित क्षेत्रों सहित) में से सात राज्य हिंदी भाषी हैं। गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब में बड़ी संख्या में लोग हिंदी जानते हैं। इतने विस्तृत उपभोक्ता बाजार के लिए बनने वाली विपणन-नीति की भाषिक अभिव्यक्ति का माध्यम वह भाषा नहीं हो सकती जिसे यहां का विशाल उपभोक्ता वर्ग नहीं जानता।

व्यापक जनसमुदाय तक पहुंचने वाले संदेश की प्रभावशीलता संदेश की मौलिकता, ताजगी और जन-अपील की सामर्थ्य पर निर्भर होगी। यह एक सूत्र है जो बाजारोन्मुख प्रतिस्पर्धा के माहौल की आवश्यकता के अनुरूप भाषिक मुहावरा गढ़ने में उपयोगी हो सकता है।

आने वाले समय में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की भूमिका महज नियम कानून के पालन तक सीमित नहीं होगी। हमारी भाषाओं को हमारी संस्कृति, राष्ट्रीय अस्मिता और जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति की संवाहिका की भूमिका भी अदा करनी होगी। वैसे भारतीय भाषाएं इस भूमिका का निर्वाह कारगर रूप में करती रही है पर आगामी शती में देशों और समाजों के सांस्कृतिक अस्तित्व और राष्ट्रीय अस्मिता के प्रश्न और भी जटिल हो जाएंगे। बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था की उपभोक्ता संस्कृति मुख्यत: भारत के मध्य वर्ग को लक्षित करेगी। मध्यवर्ग की आकाक्षाएं उसे उपयोगी खरीददार अर्थात् बाजार संस्कृति की जरूरतों के अनुरूप मुनाफ़ा देने वाले उपकरण में ढालती जाएंगी। इस प्रक्रिया में मध्यवर्ग का चिंतन व सोच, उसकी रूचियां, उसके भाषिक संस्कार उस पाश्चात्य जीवनशैली के घातक प्रभावों से नहीं बच सकेंगे जिसका प्रसारण संचार-माध्यम एक ''वर्णसंकर भाषा'' के माध्यम से कर रहे हैं। इस स्थिति में यह आवश्यक होगा कि नयी आर्थिक संस्कृति के साथ-साथ हमारी अपनी भाषिक संस्कृति भी विकसित हो, नए दौर के वित्तीय, प्रशासनिक तथा विधिक आदि क्षेत्रों के कार्य-व्यवहारों के सक्षम संचालन का माध्यम बनने के साथ ही सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय अस्मिता की संवाहिका बनने का दारोमदार भी भाषाओं पर होगा।

यह सरोकार फलीभूत हो इसके लिए हमें 21वीं शताब्दी में बदलते हुए आयामों के साथ भाषा-व्यवहार को अन्य दृष्टिकोण से रेखांकित करना होगा। अब तक हम ''डाइरेक्शनल-एप्रोच'' की बात करते रहे हैं। अब हमें ''डाइमेंशनल-एप्रोच'' की बात करनी होगी। इसमें दृष्टिकोण यह होगा कि राजभाषा हिंदी तथा अन्य भारतीय-भाषाओं का प्रयोग का बढ़ाना केवल संवैधानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही जरूरी नहीं है, बल्कि उससे ज्यादा जरूरी इस दृष्टि से है कि यह भारतीय समाज के बहुभाषी ढांचे में सेवादायी संस्थानों और उत्पादन केन्द्रित संस्थानों, दोनों ही के लिए लाभदायकता बढ़ाने का एक पूरक और उपयोगी माध्यम है। हिंदी का प्रयोग लाभदायकता और उत्पादकता की वृद्धि के लिए अधिक प्रासंगिक और सार्थक है। हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के अधिकाधिक प्रयोग की आवश्यकता पर भी बल देना होगा। नई भाषिक संस्कृति के विकास का तकाज़ा भी है।

निजीकरण या विनिवेश के बारे में मुख्य सतर्कता आयुक्त एन. विट्ठल ने अपने "डिसइन्वेस्टमेंट थ्रू डिसइंसेटिव" शीर्षक लेख (इकनॉमिक टाइम्स 1-9-2000) में सार्वजनिक संस्थानों की आचार संहिता के प्रसंग में एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही है। उसका सारांश कुछ इस तरह है कि संस्थानों के कार्यकलापों को जनता तक पहुंचाने के संदर्भ में जनता के सूचना-प्राप्ति के अधिकार का सम्मान करना चाहिए। मैं इस देश के करोड़ों उपभोक्ताओं की भाषा हिंदी का सम्मान करने के अर्थ में श्री विठ्ठल की इस बात को बहुत सार्थक मानता हूं।

एक मुद्दा राजभाषा के बारे में

निजीकरण की प्रक्रिया में कई निजी कंपनियां व विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियां सार्वजनिक कहे जाने वाले क्षेत्र प्रवेश कर रही हैं। इन निजी व विदेशी कंपनियों पर भी राजभाषा नीति लागू करने पर सरकार को विचार करना चाहिए। कहीं न कहीं ये "रेग्यूलेटरी अथॉरटीज़" के नियंत्रण में तो हैं ही। फिर भी उदारीकरण के दौर में यदि लाइसेंस -परमिट से छूट दी जा सकती है तो भारत में कार्य करने के लिए इन पर "संघ" की राजभाषा का प्रयोग करने का दायित्व क्यों न हो। आखिरकार भारत सरकार का राजभाषा विभाग विदेशों में कार्यरत भारतीय बैंकों व कंपनियों के लिए अपने वार्षिक कार्यक्रम में कुछ लक्ष्य निर्धारित करता ही है। तो फिर निजी व विदेशी कंपनियों को भारत में राजभाषा-कार्यान्वयन के दायरे से बाहर रखने का क्या तर्क है ?

जनभाषा हिंदी तो निजीकृत ही रही है

हिंदी के निजीकरण में संदर्भ में यह ग़ौरतलब है कि हिंदी हमेशा से निजीकृत रही है। हिंदी ही क्यों, हर विकासशील जनभाषा निजी अर्थात् जनसामान्य के सहयोग एवं संरक्षण में ही फलती-फूलती है। सरकार, राज्य या व्यवस्था का स्वामित्व भाषा का विकास नहीं करता। भाषा की "ओनरशिप" तो जनता के पास ही रही है। क्यों कि भाषा जनसंवाद के माध्यम के रूप में सार्वजनिक सम्पत्ति होती है। विद्वानों भाषा-वैज्ञानिकों या व्याकरण-निष्णातों का एकाधिकार नहीं होता भाषा पर प्रशासकीय-राजनीतिक व्यवस्थाएं या नियम-कानून भाषा का विकास निर्धारित नहीं करते। भाषा पर "वर्ग" विशेष या व्यवस्था का स्वामित्व उसे जनसामान्य से काट कर हाशिए पर ले आता है। हिब्रु तथा संस्कृत जैसी भाषाएं जनसामान्य से कट कर हाशिए पर चली गई। हिंदी ने बावजूद तमाम अवरोधों के, इस देश के करोड़ों लोगों के बीच सार्थक संवाद की भाषा बनकर वास्तविक "लिंग्वाफ्रांका" अर्थात् जनभाषा की अपनी सामर्थ्य को सिद्ध किया है। इसलिए अमूर्त आशंकाओं के नकारात्मक सोच से मुक्त होकर बदलते आर्थिक परिदृश्य के अनुरूप भाषा विकास के उस अगले चरण की ओर बढ़ा जाए जिससे सम्बद्ध मुद्दों की ओर हमने संकेत किया है।

ये कुछ बातें हैं जो अगली शताब्दी में अर्थव्यवस्था तथा प्रकारान्तर से हमारी सामाजिक संरचना में भाषाओं की भूमिका को समझने के लिए बनाए जाने वाले "रोडमैप" के लिए उपयोगी हो सकती हैं।

उप महाप्रबंधक, बैंक ऑफ बड़ौदा, केंद्रीय कार्यालय, मुंबई।

गढ़वाली भाषा

—डॉ० अचलानन्द जखमोला

उत्तर में भोट-तिब्बत, दक्षिण में बिजनौर-सहारनपुर, पश्चिमोत्तर में हिमाचल एवं पूर्व में कुमाऊं से देवतात्मा नगाधिराज की गोद में बसा उत्तर प्रदेश का उत्तर पश्चिमी क्षेत्र[1] सामान्यतः गढ़वाली भाषा-भाषियों की निवास स्थली है। लगभग तीस हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल, और तीस लाख निवासियों का यह क्षेत्र[2] अपनी विशिष्ठ सांस्कृतिक विरासत, ऐतिहासिक महत्व तथा विपुल प्राकृतिक सम्पदा के लिए तो अतुलनीय है ही, इस भू-भाग की बोलचाल और सामान्य कामकाजी भाषा गढ़वाली का परम्परागत स्वतन्त्र साहित्य भी है, जिसका भाषा शास्त्रीय एवं भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, शब्द भंडार तथा अर्थगत वैशिष्ट्य का ज्ञान हमारी राष्ट्रभाषा के वर्धनार्थ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

इस क्षेत्र का 'गढ़वाल' नाम सन् 1500 से 1515 ई० के आसपास रखा जाना माना जाता है।[3] पूर्वेतिहासिक काल में यह भू-खंड ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मदेश या ब्रह्मर्षिदेश के नाम से जाना जाता था।[4] महाभारत एवं पुराणों में इस क्षेत्र की जन जातियों—दस्यु, किन्नर, किरात, नाग, शक, खस—का उल्लेख मिलता है, जिनकी शब्दावली से आज की गढ़वाली प्रभावित है। स्कन्दपुराण के केदारखंड के अनुसार हिमालय तब पांच खंडों[5] में विभाजित था, जिनमें से केदारमंडल, सर्वोत्तम प्रदेश माना जाता था।[6] केदारमंडल अर्थात् वर्तमान गढ़वाल, जिसके अन्य प्रचलित नामों में पांचाल देश, तपोभूमि, देव-भूमि, बदरिकाश्रम आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। हिन्दुओं के प्रसिद्ध चारों धाम-केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री तथा यमनोत्री, अनेक तीर्थ स्थल तथा पवित्र धार्मिक मठ इसी क्षेत्र में स्थित हैं।

---

1. उत्तर प्रदेश के छः जनपद-उत्तरकाशी, चमोली, रुद्रप्रयाग, पौड़ी गढ़वाल, टिहरी तथा देहरादून इस क्षेत्र में आते हैं।
2. सन् 1991 की जनगणना के आधार पर।
3. डॉ० शिवप्रसाद डबराल : उत्तराखंड का इतिहास तथा पं. हरिकृष्ण रतूड़ी: गढ़वाल का इतिहास, पृ० 2 ।
4. डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी : हिन्दू सभ्यता, पृ० 70-71 ।
5. खंडा पंच हिमालयस्य कथिता नेपाल कूर्मांचलौ।
   केदारोऽथ जलंधरोऽथ रुचिर कश्मीर संज्ञोऽन्तिम॥ —वेदव्यास, स्कन्दपुराण-40
6. केदारमण्डल ख्यातं भूम्यास्तद् भिन्नकंस्थलम्।
   वात्साल्यात्तव देवेशी कथितं देशमुत्तमम्।। —वही, श्लोक 29

उपलब्ध सामग्री

अभी तक गढ़वाली भाषा का न तो कोई अधिकृत सर्वांगीण भाषा वैज्ञानिक अध्ययन हो पाया है और न भाषा शास्त्रीय विवेचन। सम्पूर्ण व्याकरणिक समीक्षा तथा विशद शब्द कोश किसी भी भाषा के अध्येता के लिए परम आधारभूत सामग्री होती है, जिसके अधिकृत रूप अभी तक गढ़वाली में नहीं मिलते। पहाड़ी भाषाओं का अध्ययन वैसे भी अपेक्षाकृत दुष्कर कार्य है। सीमित प्रकाशित साहित्य गढ़वाली भाषा के जिज्ञासु के लिए अधिक सहायक नहीं है।

गढ़वाली भाषा का क्रमबद्ध तुलनात्मक अध्ययन सर्वप्रथम पादरी एस०एच० केलॉग ने अपनी पुस्तक "ए ग्रामर ऑन् दि हिंदी लैंग्वेज" के द्वितीय संस्करण (सन् 1893 ई०) में हिंदी बोलियों के अन्तर्गत किया। तदुपरान्त जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन का बहुचर्चित तथा ख्यातिप्राप्त "लिंग्विस्टिक सर्वे ऑन् इंडिया" सन् 1894—1927 ई० की अवधि में प्रकाशित हुआ जिसे अभी तक सभी भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक वर्गीकरण का प्रस्थान-बिन्दु माना जाता है। पादरी ओकले तथा तारादत्त गैरोला कृत "हिमालयन फोकलोर" (सन् 1934 ई०) महापंडित राहुल सांकृत्यायन की दो बहुमूल्य कृत्तियां—"किन्नर देश" (सन् 1951 ई०) व "हिमालय परिचय—गढ़वाल" (सन् 1953 ई०) जैसी परमोपयोगी पुस्तकों तथा "इंडियन एंटीक्वेरी" प्रभृत्ति अंग्रेजी पत्रिकाओं में यदा-कदा प्रकाशित लेखों ने प्रारम्भ में गढ़वाली भाषा के शास्त्रीय विवेचन का मार्ग प्रशस्त किया।

डॉ० गुणानन्द जुयाल का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध "मध्य पहाड़ी भाषा (गढ़वाली कुमाऊंनी) का अनुशीलन और उसका हिंदी से सम्बन्ध" इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास होना चाहिए, परन्तु प्रकाशित न होने के कारण इसकी उपादेयता विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों तक सीमित है। डॉ० गोविन्द चालक का शोध प्रबन्ध "गढ़वाल की रवांल्टी उपबोली, उसके लोकगीत और उसमें अभिव्यक्त लोक संस्कृति" तथा उन्हीं द्वारा रचित "गढ़वाली भाषा" (सन् 1959 ई०) श्लाघनीय प्रयास है। इसी क्रम में डॉ० हरिदत्त भट्ट "शैलेश" कृत "गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य" (सन् 1976 ई०) अति महत्वपूर्ण एवं उपादेय आधारभूत सामग्री प्रस्तुत करता है।

गढ़वाली भाषा के कोश-निर्माण के क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयास पं० प्रजाराम ग्वाड़ी ने किया जिनके द्वारा संकलित "गढ़वाली-नागरी कोश" गढ़वाल प्रचारक मंडल, इन्दौर द्वारा 1937 ई० में आंशिक रूप से प्रकाशित हुआ। प्रारम्भिक प्रयास को दृष्टि में रखते हुए यह एक स्तुत्य एवं श्रमयाध्य कार्य था परन्तु किन्हीं कारणों से यह कोश 'अ' 'आ' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले सीमित गढ़वाली शब्दों तक ही प्रकाश में आ सका। इस अपूर्ण कोश में गढ़वाली के शब्द पहले देवनागरी लिपि, फिर नस्ता लीक लिपि में देने के पश्चात् शुद्ध अरबी फारसी के प्रतिरूप व पुनः संस्कृत तथा मराठी के समानार्थी शब्द दिए गए हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह अति प्रशंसनीय प्रयास है।

इसी बीच गढ़वाली कोश निर्माण के क्षेत्र में कुछेक अन्य प्रयास[1] भी किए गए परन्तु सफलता मास्टर जयलाल द्वारा संकलित ''गढ़वाली भाषा का शब्दकोश''[2] तथा जगतचन्द रमोला को ही मिल पाई। जयलाल कृत कोश गढ़वाली भाषा की समृद्धि की दिशा में पर्याप्त श्रीवृद्धि करेगा, ऐसी आशा है।

उपरोक्त महत्वपूर्ण कोश ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ पत्र पत्रिकाओं में भी समय-समय पर गढ़वाली भाषा सम्बन्धी लेख प्रकाशित होते रहे। यात्रा विवरणों में बैरन, शेरिंग, जोधसिंह नेगी, स्वामी प्रणवानन्द, राहुल सांकृत्यायन प्रभृति यायावरी साहित्यकारों[3] की रचनाएं मूलतः भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक महत्व की हैं परन्तु प्रासंगिक रूप में गढ़वाली भाषा को समझने में भी सहायक हैं। अबोधबन्धु बहुगुणाकृत ''गढ़वाली व्याकरण की रूप रेखा'' (सन् 1960 ई०) अति महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक प्रयास है।

उद्गम प्रभाव एवं विकास

क्षेत्र विशेष की भाषा विस्तार तथा शब्दावली का सही आकलनार्थ वहां के मूल निवासियों तथा जातियों का विवरण सहायक सिद्ध होते हैं। एटकिंसन ने अपने गैजेटियर[4] में गढ़वाल के आदि निवासियों को किरात, गंधर्व, किन्नर, खस, नाग आदि जातियों से सम्बद्ध किया है। अपने सुप्रसिद्ध भाषा सर्वेक्षण में जॉर्ज ग्रियर्सन ने भी गढ़वाल वासियों को प्राचीन खस एवं पिशाच जातियों से जोड़ा है जो दरद भाषा बोलते थे तथा जिसके अवशेष सारे सपादलक्ष में विद्यमान है।[5] आंशिक रूप से ग्रियर्सन के साथ सहमति देते हुए राहुल सांकृत्यायन का मत है कि गढ़वाली कुछ समय तक कनौरी से प्रभावित रही।[6] उन्होंने किन्नर-किरातों का देवतावाचक 'सूँ' या 'शू' का दृष्टान्त दिया जिसका प्रत्ययात्मक प्रयोग गढ़वाल के गाँव समूह-पट्टियों-में अभी भी प्रयुक्त होता है, यथा—डबरालस्यूं, असवालस्यूं, घुड़दौड़स्यू, बारहस्यूं अदि। जौनसार क्षेत्र में 'महासू' आज भी सबसे श्रेष्ठ देव है।[7]

गढ़वाल की ऐतिहासिक परम्परा[8] में यक्ष, किन्नर, नाग किरात, कोल, खश, हूण, कुमयू, आर्य अनेक जातियों का उल्लेख है जिन्होंने गढ़वाली भाषा के स्वरूप के संजोया और संवारा। परन्तु इसके फलस्वरूप गढ़वाली के स्रोत, उद्गम, प्रभाव एवं विकास के सम्बन्ध में भाषा शास्त्रियों के भिन्न-भिन्न मत तथा मान्यताएं भी बन गईं।

---

1. गढ़वाली भाषा के कोश निर्माण के क्षेत्र में, तुलाराम शर्मा 'चन्द्र', श्रीधरानन्द घिल्डियाल, बलदेव प्रसाद नौटियाल, गुणानन्द ढौंडियाल आदि ने भी प्रयास किए—देखिए डॉ० विनय कुमार डबराल : उत्तराखंड का इतिहास (डॉ० शिवप्रसाद डबराल कृत) पृ० 531, भजन सिंह, 'सिंह', तथा मोहनलाल बाबुलकर : भूमिका (गढ़वाली शब्द कोश) पृ० 30-31 व 49।
2. सम्पादक कुंवर सिंह नेगी कर्मठ, सन् 1982 में प्रकाशित
3. बैरन कृत 'वांडरिंग्ज इन द हिमाला' (सन् 1841 ई०), शेरिंग का 'वेस्टर्न तिब्बत एण्ड ब्रिटिश बार्डरलैंड' (सन् 1906 ई०), जोधसिंह नेगी द्वारा रचित 'हिमालयन ट्रेवल्स' (सन् 1920 ई०), स्वामी प्रणवानन्द की कृति 'कैलाश-मानसरोवर' तथा सांस्कृत्यायन की पुस्तकें 'हिमालय परिचय-गढ़वाल' (सन् 1953 ई०) तथा 'किन्नर देश'।
4. ई०टी० एटकिंसन : 'हिमालय डिस्ट्रिक्ट्स आन दि नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेस ऑन् इंडिया, खंड 2, पृ० 336।
5. डॉ० जॉर्ज ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे ऑन् इंडिया, खंड 9, भाग 4, पृ० 8
6. राहुल सांकृत्यायन : हिमालय परिचय, भाग 1, पृ० 50
7. डॉ० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' : गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, भूमिका, पृ० 2
8. देखिए—'गढ़वाल एंश्येण्ट एण्ड मॉर्डन' (डॉ० पातीराम), 'गढ़वाल का इतिहास' (पं० हरिकृष्ण रतूड़ी), तथा 'उत्तराखंड का इतिहास' खंड 1-2 (डॉ० शिवप्रसाद डबराल)

व्याकरणविद पादरी एस.एच. केलॉग ने गढ़वाली के भाषागत रूप पर सर्वप्रथम प्रकाश डाला। अपने हिंदी व्याकरण के दूसरे संस्करण[1] में उन्होंने हिंदी के तेरह चौदह रूपों का तुलनात्मक परिचय देते हुए गढ़वाली को कुमाऊनी तथा नेपाली के साथ 'हिमालयन डाइलेक्ट्स' के अन्तर्गत परिगणित किया तथा भाषागत साम्य के आधार पर उसे राजस्थानी के अधिक निकट मानते हुए अन्ततोगत्वा हिंदी की ही एक विभाषा घोषित कर दिया।

डॉ० जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने अपने प्रसिद्ध भाषा सर्वेक्षण खंड 7, भाग 4 में विस्तारपूर्वक तथा खंड 1, भाग 1 में गौणत: गढ़वाली की पृष्ठभूमि स्पष्ट की। वे गढ़वाली का उद्गम हिंदी से सर्वथा भिन्न मानते हुए उसे पिशाच, दरद और खस भाषा से जोड़ते हैं। 'इंडियन एण्टीक्वेरी' (सन् 1914 ई०) में प्रकाशित एक लेख में उन्होंने गढ़वाली को 'स्वात प्रदेश' की मूल भाषा से भी जोड़ा। इसी संदर्भ में वे गूजरी की उप बोलियों, यथा–मेवाती, मेवाड़ी जैसी पूर्वी राजस्थानी, से भी गढ़वाली की साम्यता मानते हैं।[2]

ग्रियर्सन से आंशिक असहमति रखते हुए भी डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या गढ़वाली का स्रोत खसखुरा, पैशाची तथा दरद प्राकृत को मानते हुए मध्यकाल में उस पर राजस्थान की प्राकृत का प्रभाव घोषित करते हैं।[3] डॉ० हरदेव बाहरी ध्वनि तत्त्व, व्याकरण एवं शब्दावली के आधार पर गढ़वाली को उतनी ही जटिल मानते हैं जितनी काश्मीरी, पश्तो या अन्य दरद भाषाओं को। परन्तु गढ़वाली की व्यंजन ध्वनियों की सम्यता राजस्थानी से स्वीकार करते हैं।[4] डॉ० गुणानन्द जुयाल भी उक्तविद्वानों से सहमति रखते हुए मध्यकाल में गढ़वाली को राजस्थानी से प्रभावित मानते हैं। उन्होंने अपने शोध प्रबन्ध[5] में गढ़वाली के कई ऐसे शब्दों की चर्चा की जिनका दरद भाषा से रूपात्मक साम्य है। यथा 'खुट' (पैर), 'जून' (चांद), 'डाड़' (रोना), 'पोको' (योनि, गुदा), आदि। खस प्रभाव से आए गढ़वाली के शब्द जैसे 'बबा' (पिता), 'बल्द' (बैल), 'धार' (चोटी), 'गाड़' (छोटी नदी), 'बाट' (रास्ता), 'ढुंग' (पत्थर), आदि भी द्रष्टव्य उदाहरण हैं।

भाषाविदों का एक वर्ग गढ़वाली को शौरसेनी प्रसूत मानता है। इस धारणा का एक मुख्य कारण सम्भवतया गढ़वाली भाषा का 'उ'कार बहुला होना है। रुडॉल्फ हार्नली ने आर्य दलों के भारत में कम से कम दो बार आने सम्बन्धी अपनी सुप्रसिद्ध अवधारणा मूलत: भाषागत आधार पर बनाई। उनकी मान्यता थी कि तत्कालीन उत्तर भारत में व्यापक रूप से दो भाषायी समुदाय थे— मागधी और शौरसेनी, जो अलग आए आर्यों के दलों का प्रतिनिधित्व करती है।[6] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार शौरसेनी का किसी न किसी रूप में गढ़वाली से सम्बन्ध रहा है।[7] इसी सिद्धान्त का

1. पादरी एस० एच० केलॉग : ग्रामर आव दि हिंदी लैंग्वेज, (सन् 1893 ई०), पृ० 77
2. ".....सेंट्रल पहाड़ी एग्रीज विद .....ईस्टर्न राजस्थानी इन हैविंग जेनिटिव पोस्ट पोजीशन को. एण्ड दि बर्न सन्सटैंटिव डिराब्ड प्राम दि रूट 'अच्छ'....."
3. डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या : ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ बंगाली लैंग्वेज, पृ० 68.
4. डॉ० हरदेव बाहरी : ग्रामीण हिंदी बोलियां, पृ० 148-161
5. डॉ० गुणानन्द जुयाल : मध्य पहाड़ी भाषा (गढ़वाली-कुमाऊंनी) का अनुशीलन और उसका हिंदी से सम्बन्ध (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), पृ० 32
6. रूडोल्फ हार्नली : ग्रामर आव दि ईस्टर्न हिंदी, भूमिका, पृ. 32
7. हरिराम धस्माना : वेदमाता, पृ० 77

आंशिक रूप से प्रतिपादन करते हुए डॉ० उदय नारायण तिवारी भी गढ़वाली को शौरसेनी से प्रभावित मानते हैं।[1] डॉ. गोविन्द चातक की मान्यता है कि गढ़वाली के उद्गम और विकास के लिए शौरसेनी प्राकृत व अपभ्रंश कारक बने।[2] डॉ. भोलाशंकर व्यास, डॉ. टी.एन. दवे की एतद्विषयक स्थापना को अधिक समीचीन मानते हुए अपनी धारणा भी यही बनाते हैं कि गढ़वाली की मूल भित्ति शौरसेनी ही थी।[3]

उपर्युक्त भाषाविज्ञों की अवधारणाओं से हटकर कुछ अन्य विद्वान गढ़वाली को स्वतंत्र रूप से विकसित एक भिन्न भाषा मानते हैं। मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक "साइंस ऑव् लैंग्वेज" में गढ़वाली को एक स्वतः स्फूर्त प्राकृतिक भाषा माना है।[4] इस सम्बन्ध में डॉ. भंडारकर का अभिमत विशेष महत्वपूर्ण हैं। वे गढ़वाली को राजस्थानी से नहीं, अपितु उल्टे राजस्थानी को गढ़वाली (जिसे वे "पहाड़ी हिंदी" की संज्ञा देते हैं) से प्रभावित मानते हैं।[5] केप्टन शूरवीर सिंह तथा हरिराम धस्माना ने वेदों में उल्लिखित "सप्तसिन्धु" को गढ़वाल क्षेत्र मानते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि गढ़वाली वैदिक संस्कृत से ही प्रसूत है।[6] हरिराम धस्माना ने अपनी पुस्तक "ऋग्वेद कालीन इतिहास में अनेकों उदाहरण देकर यह पुस्ट करने का प्रयास किया है कि गढ़वाली के शब्द वैदिक संस्कृत के अधिक निकट है।[7] डॉ. हरिदत्त भट्ट भी गढ़वाली को वैदिक संस्कृत छांदस अपभ्रंश से विकसित, मानते हुए उसे एक स्वतंत्र भाषा मानते हैं[8], इसी प्रकार श्यामचन्द नेगी तथा चन्द्रमोहन रतूड़ी प्रभृति कुछ अन्य साहित्य मनीषियों ने भी गढ़वाली को एक स्वयं में विकसित-पल्लवित भाषा होने की पुष्टि की है[9]।

इसमें कोई संदेह नहीं कि वैदिक एवं लौकिक संस्कृत की मूल ध्वनियों को जितना गढ़वाली भाषा ने अक्षुण रखा उतना किसी अन्य आर्य भाषा ने नहीं, गढ़वाली में संस्कृत के सभी महाप्राण व्यंजन- 'स' 'श' 'ष' तथा अनुनाशिकों में 'ङ' और 'ञ' यथावत सुरक्षित हैं, जिनका अन्य आर्य भाषाओं में अवशेष अब नहीं है।

इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि गढ़वाली में दरद, पैशाची, खस, किन्नर आदि भाषाओं के अतिरिक्त भारतीय आर्य भाषाओं तथा वैदिक, संस्कृत (तत्सम, अर्द्ध तत्सम, पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश), नव्य आर्य भाषाओं (राजस्थानी, मराठी, गुजराती, ब्रजभाषा, अवधी, बिहारी, बंगला, नेपाली, सिंधी, पंजाबी आदि) के कई शब्दों में अद्भुत समानता है। गढ़वाल

1. डॉ. उदय नारायण तिवारी : भोजपुरी भाषा और साहिक, उपोद्घात, पृ. 171
2. डॉ. गोविन्द चातक : गढ़वाली की रवाल्टी उपबोली, उसके लोकगीत और उसमें अभिव्यक्त लोक संस्कृति (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), सामान्य परिव्यय
3. डॉ. भोला शंकर व्यास : गढ़वाली भाषा (चातक), प्रस्थापना
4. गढ़वाली साहित्य की भूमिका, (श्यामचन्द नेगी), पृ. 37
5. उद्धरण, लिंग्विास्टिक सर्वे आफ इंडिया, जिल्द 9, भाग 4, पृ. 12
6. हरिराम धस्माना : वेदमाता, 1077
7. सतीश पोखरियाल : गढ़वाली व्याकरण की रूप रेखा (अबोधबन्धु बहुगुणा), भूमिका
8. डॉ० हरिदत्त भट्ट : उत्तराखंड की आंचलिक भाषाएं, लेख; उत्तराखंड महोत्सव विशेषांक, पृ० 63
9. श्यामचन्द नेगी : गढ़वाली साहित्य की भूमिका, पृ० 39

कोल, भील, किरात, शक, हूण, द्रविड़ आदि कई अनार्य जातियों का भी आभास रहा। अत: इनकी बोलियों के एकाधिक अंश गढ़वाली में होना स्वाभाविक है, परन्तु इस आधार पर इन भाषाओं को गढ़वाली की जननी या मातामही मान लेना उचित नहीं होगा। नृवंशीय आदान-प्रदान तथा कई जातियों का आवर्तन-प्रत्यावर्तन हिमालय की इस गोद में सहस्र वर्षों से चलता रहा। मध्यकाल में राजनैतिक एवं सामरिक हलचलों से प्रभावित उत्तरी भारत के महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान से लेकर बंगाल तक के युद्धों में पराजित एवं अन्य विस्थापित दलों को गढ़वाल की अगम्य घाटियों ने शरण दी। देश के विभिन्न भागों से पर्यटकों तथा तीर्थयात्रियों का देवभूमि गढ़वाल में आवागमन होता रहा। अत: गढ़वाली भाषा में इन दलों की बोली के कुछ शब्दों का समावेश स्वाभाविक था।

मानक रूप एवं उपभेद

भौगोलिक स्थितियों के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में थोड़ी थोड़ी दूर पर भाषागत विविधताएं तथा भिन्नताएं उत्पन्न हो गई हैं। फिर आवागमन की कठिनाई से विभिन्न घाटियों के निवासियों का परस्पर सम्पर्क भी सीमित रहा। इसीलिए गढ़वाली जैसी पहाड़ी भाषाओं में अन्य भाषाओं की अपेक्षा बहुरूपता अधिक दीखती है। परन्तु यह विविधता सतही है।

डॉ. जार्ज ग्रियर्सन ने भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए 'भीतरी उपशाखा' में ''पहाड़ी को तीन उपवर्गों में विभक्त किया जिसके अन्तर्गत'' ''केन्द्रीय पहाड़ी'' में गढ़वाली और कुमाऊंनी सम्मिलित हैं। उन्होन गढ़वाली के सोदाहरण आठ उपभेद किए—श्रीनगरी, नागपुरिया, दसौल्या, बथाणी, राठी, मांझ कुम्मैया, सलाणी एवं टिहरियाली।[1]

ऐतिहासिक और अपने समय की दृष्टि से ग्रियर्सन का सर्वेक्षण निस्संदेह अति महत्वपूर्ण है। वे एक सिद्ध भाषा शास्त्री थे परन्तु गढ़वाली भाषा से स्वयं अनभिज्ञ होने के कारण उन्हें मूलत: भाषा विज्ञान से अपरिचित कार्य कर्ताओं तथा अनुवादकों पर निर्भर रहना पड़ा जिसके फलस्वरूप उनका वर्गीकरण त्रुटिपूर्ण और सतही है।[2]

उच्चारण की शुद्धता, शैली और लहजे की दृष्टि से चक्रधर बहुगुणा ने गढ़वाली के छ: उपभेद किए हैं—बथाणी, सलाणी, जौनसारी, रवाल्टी, श्रीनगरी बाजारी, श्रीनगरी टिहरियाली तथा रागसी[3]। व्यापकता को ध्यान में रखते हुए टीकाराम शर्मा ने निष्कर्ष निकाला है कि गढ़वाली की तीन मुख्य बोलियां है—टिहरी-श्रीनगरी, रवांल्टी-जौनसारी एवं चौंद कोट-सलाणी[4]।

आधुनिक साहित्यकार सामान्य रूप से गढ़वाली के चार रूप मानते हैं—श्रीनगरी, सलाणी, टिहरियाली तथा जौनसार-रवांल्टी। कुछ शब्दों तथा उच्चारण में यत्र तत्र बदलाव या हेर फेर पाया जाता है, परन्तु उससे भावगम्यता या अर्थ बोध में कोई कठिनाई नहीं आती। सीमान्त क्षेत्र की बोलियों में मिश्रण पाया जाना समस्त विश्व की भाषागत विशेषताएं होती हैं। गढ़वाली के समस्त साहित्यकार और लेखक यह स्वीकारते हैं कि श्रीनगर-टिहरी के आसपास प्रयुक्त होने वाली बोलचाल की भाषा ही गढ़वाली का मानक रूप है और सामान्यत: इसी में गढ़वाली साहित्य रचित है।

---

1. डॉ. जार्ज ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, भाग 9, खंड 2, पृ. 164
2. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : गढ़वाली भाषा (गोविन्द चातक)-भूमिका
3. डॉ० हरिदत्त भट्ट ''शैलेश'': गढ़वाली साहित्य की भूमिका, पृ० 64
4. राहुल सांकृत्यायन : हिमालय परिचय, भाग 1, पृ० 288

शब्द समूह

गढ़वाली शब्दों की एक विशिष्टता यह है कि इसमें कुमाऊंनी की भांति[1] तीन अक्षरों के शब्द, शाब्दिक गठन के मुख्य आधार हैं। जैसे पिछले अनुच्छेदों में स्पष्ट किया गया है। अन्य भाषाओं की भांति गढ़वाली ने भी वैदिक, आर्य, आर्येतर तथा आधुनिक व विदेशी भाषाओं के शब्द ग्रहण कर अपना विस्तार किया, परन्तु यहां की आदि कालीन जातियों द्वारा प्रयुक्त शब्दावली ही मूलतः गढ़वाली को धरातल निर्मित करते हैं।

गढ़वाली में स्थानीय प्रकृति एवं व्यक्ति संबंधी शब्दों का अपार भंडार है। प्राकृतिक जीव-जन्तुओं, नदी-नालों, पशु-पक्षियों तथा स्थानीय आंचलिक व्यापार तथा व्यवहार पर गढ़े गए इन शब्दों की महत्ता अप्रतिम है। यहां अनेक नदियां प्रवाहित होती हैं, जिनमें जलधाराएं मिलती हैं, बरसाती नाले मिलते हैं। इनकी ध्वनि, गूंज, आकार, प्रकार, उपादेयता और पानी के आयतन के आधार पर कई शब्द विद्यमान हैं। ''गधेरा'' छोटा सा झरना है जिसे पैदल पार कर सकते हैं। ''गंगा'' ऐसी बड़ी नदी (गोमुख से निकलने वाली भागीरथी गंगा के अतिरिक्त) है जिसे पैदल पार नहीं कर सकते। बरसात में बहने वाले जल प्रपात को ''रौड़'' कहते हैं। नदी के किनारे बालू वाला भाग ''बगड़'' कहलाता है। चारों ओर से बन्द दुर्गन्धयुक्त तालाब को ''खाल'' कहते हैं। स्वच्छ जल वाला विशाल तालाब ''ताल'' कहलाता है। ''नद्दि'' सामान्य नदी है तो गदन दो घाटियों के बीच डरावनी गूंज पैदा करने वाली। इसी के अन्य नाम गदनी, गदरू, गदरी, गदेरू और गाड़ में गीतात्मकता है। ''रौ'' व ''ढांडि'' एकत्र जल है।

हिंदी में एक शब्द है ''शरारत''। गढ़वाली में उसके लिए उतराल्यू, विगच्यूं, चवटाल्यूं, थिणक्यू, पत्यग्यूं आदि कई शब्द हैं। खुजली सामान्य अनुभूति का द्योतक है। ''खाज्जि'' रोगोत्पन्न खुजली है। ''कन्यै'' खटमल, जूं, पिस्सू आदि जीवों द्वारा कटने पर अनुभूत होती है। अरबी घुइयां जैसे किसी वस्तु का रस लग जाए उस संसर्गयुक्त खुजली को ''किकै'' कहते हैं। ये शब्द समानार्थी नहीं, अनेकार्थी हैं।

अबै, अगेलों, औल्याण, कलकली, करखुला, खुद, गुठयार, गोठ, चड़म, घांण, चुक्कापट, छमोट, झणी, झइ, टुक, हुंगार, डांडा, तातो, दुत्तो, धार, धुयांल, निसपरै, नवांण, पारवा,पछिंडी, फिरड़ा-फिरड़ी, बिलकुणु, बुखण, बिखुन, मावत, मौल्यार, रुणपित्ये, लट्याली, लगलि, लोलि, लुणभुण, समलौंण, स्वटगी, स्वाणी आदि अनगिनत ऐसे शब्द गढ़वाली में हैं जिनका पर्याय हिंदी, अंग्रेजी या किसी भाषा में नहीं मिलेगा।[2]

गढ़वाली में नामधातुओं की अवस्थिति और उनकी व्यवहारगत सरलता, अभिव्यक्ति को संश्लिष्ट परन्तु साथ ही चित्रात्मक और बोधगम्य बना देती हैं। ''सिंग्याणु'' (सींग मारना), धद्याणु (ऊंची आवाज से बुलाना), चुंगन्याणु, (धीरे धीरे कण कण उठा कर खाना), ''क्वींनाणु'' (कोहनी मार कर एक ओर धकेलना), ''सबल्याणु'' (सब्बल मार कर पत्थर बाहर निकालना) आदि अनेक ऐसी नाम धातुएं गढ़वाली भाषा को अन्य आंचलिक भाषाओं की अपेक्षा अधिक धनाढ्य बनाती हैं।

---

1. डॉ. त्रिलोचन पांडेय : कुमाऊंनी और उसका साहित्य, पृ. 57.
2. श्री अबोध बन्धु बहुगुणा ने अपनी पुस्तक गढ़वाली व्याकरण की रूपरेखा के परिशिष्ट 3 में उपरोक्त के अतिरिक्त लगभग 500 शब्द संकलित किए हैं जिनको हिंदी में अपनाया जा सकता है।

अर्थगत विशेषताएं

गढ़वाली के अनगिनत शब्द अन्तश्चेतना संयुक्त अनुभूति की अभिव्यक्ति, संप्रेषणीयता तथा आस्वादिता के लिए अप्रतिम हैं। विशेष रूप से स्थानीय शब्दावली देशज शब्द सूक्ष्म अर्थ की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यहां के भौगोलिक तथा सामाजिक परिवेश से संबंधित या असंख्य पशु पक्षियों की ध्वनियां, एवं प्राकृतिक सम्पदा को चित्रित करने, व उनकी प्रवृत्ति तथा गुणों को व्यक्त करने वाले शब्द समुच्चय बेजोड़ हैं। अनाज के कच्चेपन, अधपकेपन, पकने, सड़ने, गलने के द्योतक तथा रूप, रस व गंध विभिन्न क्रमिक भेद, दर्शाने वाले गढ़वाली शब्द उसके शृंगार हैं।

उदाहरणार्थ बास (गंध) के द्योतक 'कुतराण' (सूती कपड़े के जलने की गंध), किकरयाण (ऊनी कपड़े के जलने की गंध), कुलल्याण (ऊनी सूती वस्त्रों की मिश्रित), मूतराण (मूत्र की), किर्याण (बाल जलने की), 'बसांण' (बासी खाने की), खिकर्याण (मिर्चों के जलने की), 'कोखांण' (पसीने की), भयाण (गर्मी की), तैलाण (तेल की), गुवाण (पाखाने की), अमाण (खट्टे की), चिलखांण (पुराने मैले घी की), आदि शब्दों में अनुभव गम्य विलक्षण अर्थ व्यंजकता है।

इसी प्रकार घटना के प्रभाव में त्वरिता, तीव्रता एवं गहनता लाने के लिए कुछ पुनरुक्त, ध्वन्यात्मक या गत्यात्मक शब्द हैं। यथा भकोरामकोर (गपागप शीघ्रता से बिना चबाए खाना), छणमणाट (वस्तुओं का आपस में टकराना), अलबलाट (हड़बड़ाहट), च्यां प्यां (छोटे बच्चों का रोना), फुर्र फुर्र (चिड़िया का उड़ना), स्युसाट (नदी के बहने की ध्वनि), टपाटप (लगातार आंसू बहना), सुट्ट (शीघ्रता से गटक जाना) आदि, आदि।

गढ़वाली में 'दिदा' 'भुला' तथा 'दिदी' 'भुली' क्रमशः हिंदी के समानार्थक बड़ा भाई छोटा भाई एवं बड़ी बहिन छोटी बहिन की तुलना में अधिक प्यार और आत्मीयता से सम्पृक्त हैं। अंग्रेजी के ''एस्ट डे'' व ''टुमारो'' के स्थान पर हिंदी में एक ही शब्द कल प्रयुक्त होता है परन्तु गढ़वाली में इनके लिए ''ब्याले'' (बीता हुआ कल) एवं ''भोल'' (आगामी कल) दो भिन्न-भिन्न शब्द हैं। ''खुद्द'' शब्द अपने अंतरंग व्यक्ति से दूरस्थ जनित छटपटाहट, घुटन, तड़पाहट मिश्रित याद तथा अंदरूनी अकेलापन एवं तदजनित मिलने की उत्कट बलवती इच्छा का मिश्रण है।

कुछ शब्द युग्मों द्वारा ऐसा विशिष्ट अर्थ भेद लक्षित है कि उनका सरलता से हिंदी या किसी अन्य भाषा में पर्याय मिलना या स्पष्टीकरण सम्भव नहीं। कलकली प्यार व करूणा मिश्रित दया व सहायता करने की भावना है। कड़कड़ों मे नाराजी के साथ क्रोध कुछ अकड़ व मौन का सम्मिश्रण है। रगरयाट शब्द उतावलापन तथा उत्सुकता के अतिरिक्त वृद्धावस्था या रुग्णता जनित क्षीण शरीर, कंपकपी या बुद्धिह्रास का द्योतक है। 'लतपत' (खाना इधर उधर गिर जाना, पानी से भीग जाना, शरीर पर जूठा पड़ना) 'करकरों' (कपड़े के खुरदरेपन से जनित कष्ट), 'छणमण' खणमण 'खणखण' (क्रमशः बकरियों, गाय, बैलों व घोड़े खच्चरों की घंटियों के स्वर) आदि शब्द युग्म अपने में अनूठे हैं।

ध्वन्यात्मक प्रभावोत्पकता के लिए 'थ्यच्च' (हथौड़े की उंगलियों पर पड़ने व पीड़ा पहुंचाने की ध्वनि), 'घप्प' (तेज नुकीले हथियार से घोंपने की ध्वनि) 'पुट्ट' (नाखून से जुएं मारने की ध्वनि), 'छप्प' (पानी में वस्तु को फैंकने की ध्वनि) 'छल्ल' (गागर से पानी छलकने की ध्वनि) अर्थ बोधिता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

गढ़वाली वाक्यवली में कुछ ऐसे तत्व हैं जो अपनी विशिष्ट अर्थव्यंजकता के कारण अलग से पहचाने जाते हैं। इनमें से एक शब्द है ''बल''। हिंदी में प्रत्यक्ष कथन में उद्धृत वाक्य को दर्शाने का स्पष्ट नियम नहीं है। अंग्रेजी के ''दैट'' के अनुकरण पर ''कि'' लगाकर काम चलाया जाता है पर फिर भी पूर्ण स्पष्टता नहीं आती। गढ़वाली में उद्धृत वाक्य से पूर्व ''बल'' (कहा जाता है, सुना जाता है) जोड़ कर शेष कथन से पृथक कर दिया जाता है जो वक्ता की उदासीनता का व्यंजक भी है। इसी प्रकार ''धैं'' किसी को चुनौती देने अथवा संभावना प्रकट करने के संदर्भ में प्रयुक्त होता है। ''आ धैं'' (जरा आ तो) अर्थात् तेरी सामर्थ्य कितनी है, तुझमें कितनी हिम्मत है, जरा आकर दिखा !

इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्थितियों के फलस्वरूप आज गढ़वाली भाषा पश्चिमी हिंदी के अधिक निकट आ गई है, तथा इसकी शब्दावली, व्याकरण और वाक्य-विन्यास पर हिंदी का प्रभाव बढ़ गया है। परन्तु समग्र रूप से विचार करने के उपरान्त गढ़वाली को कुमाउँनी या नेपाली के समतुल्य हिंदी से पृथक एक आर्यभाषा मानना अधिक समीचीन लगता है जिसका अपना समृद्ध साहित्य है। यह भी सत्य है कि गढ़वाल वासियों द्वारा हिंदी को अपना लेने के फलस्वरूप गढ़वाली भाषा पर हिंदी, विशेष रूप से हिंदी शब्दावली का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। परन्तु भाषा विज्ञान की दृष्टि से गढ़वाली हिन्दी से उतनी ही दूर और भिन्न है जितनी मराठी, पंजाबी, गुजराती या बंगाली। कई भाषाविद् गढ़वाली को इसके ध्वनितत्व, शब्द-समूह आन्तरिक गठन, वाक्य विन्यास, व्याकरण तथा भाषा विज्ञान की दृष्टि से भिन्न तथा एक स्वतंत्र अस्तित्व वाली[1] जीवन्त भाषा मानते हैं, जिसका अपना अलग ताना बाना है, शब्द सम्पन्नता है, अर्थ-गौरव है।

हिंदी भाषा की प्रगति, विकास एवं उन्नयन की दिशा में आंचलिक एवं क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों का सम्यक् अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इन भाषाओं का अपना विशिष्ट शब्द समूह है। उनमें बेजोड़ अर्थ बोधिता है। प्रारम्भ में ''बोली'' समझी जाने वाली ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगधी, बुन्देलखंडी आदि आंचलिक भाषाओं ने हिंदी को समृद्धि व सम्पदा प्रदान की है, जिससे उसके स्वरूप में व्यापकता और विशदता आई डोगरी, कुमाउँनी गढ़वाली आदि आंचलिक भाषाएं हिंदी के विकास, समृद्धि, सम्पन्नता तथा उत्थान में अति महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। अभिव्यंजना, अभिव्यक्ति प्रेषणीयता की दृष्टि से गढ़वाली भाषा अद्वितीय है। संस्कृत तथा स्पेनिश के समान उसमें भी एक प्रवाहमान शैली है। भावाभिव्यक्ति में सटीक और आस्वादिता में अप्रतिम कुछ गढ़वाली शब्द हिंदी शब्दकोश के श्रृंगार बनने के सक्षम हैं। उसकी शब्दावली में विविधता, व्यापकता और भेदीकरण है। एक प्रसिद्ध भाषाविद् का कथन है कि ''जो जाति जितनी अधिक सभ्य होगी उसकी शब्दावली में उतना ही अधिक भेदीकरण होगा''। अतः गढ़वाली भाषा के सम्यक अध्ययन से न केवल उस क्षेत्र का सांस्कृतिक व ऐतिहासिक पक्ष उजागर होगा बल्कि इससे हिंदी भाषा की अभिवृद्धि और उन्नयन की दिशा में भी पर्याप्त योगदान मिलेगा।

1. सुरेश पंत : कुमाऊंनी भाषा में तमिल भाषा तत्व (लेख), भाषा त्रैमासिक, सितम्बर—दिसम्बर 1978, पृ. 53
2. अंचल पत्रिका, श्रेणी 1, फरवरी 1938 ई.
3. डॉ. भोलाशंकर व्यास: गढ़वाली भाषा, प्रस्थापना
4. ख्यातिप्राप्त भाषाविद ग्रील का कथन : कुमाऊंनी भाषा और उसका साहित्य (डॉ. त्रिलोचन पांडेय), पृ. 120

290/11, वसंत विहार, देहरादून-248006

रचनाकार का सच

—राजेन्द्र उपाध्याय

जो सौ फीसदी सच बोलने की कसम खाते हैं वे झूठ बोलते हैं। नए निरावरण, निर्मम, निर्भीक सच में हमारी रूचि भी उतनी नहीं होती। वह अखबार की खबर हो कर रह जाती है और अखबार की खबर भी आजकल सौ फीसदी सच होते हुए भी नमक, मिर्च, शहद लगाकर बताई जाती है, तभी उसे पढ़ने में आनंद आता है। कविता सच को बचाने के लिए कहानियां-किस्से गढ़ती है। कई बार सच को कहने की बजाय उसे बचाना ज्यादा जरूरी रहा है।

जो रचनाकार दूसरे के मन में झांककर सच की पर्तें उघाड़ता है वह अपने भीतर झांककर अपने घाव हरे करने की भी सामर्थ्य रखता है। वह अपना दु:ख सबका दु:ख बना लेता है। मीरा की बिवाई की पीर, सबकी पीर हो जाती है। टुकड़े-टुकड़े जीवन को जोड़कर एक सच्चा, प्रामाणिक जीवन-वृतांत बनाना पड़ता है। जिंदगी पर पड़े पैरों के निशान फिर टटोलने पड़ते हैं। उम्र के पन्ने फिर सिलसिलेवार जमाने पड़ते हैं। पलों में बिताए जमाने फिर दोहराने पड़तें है । क्षणों की भुरभुरी रेत को मुट्ठियों में भींचकर रखना होता है। कल्पना कई बार सच को बचाकर रखती है। साहित्य ने सच के बचाव में कई रास्ते गढ़े हैं।

आत्मकथा से सब प्रामाणिकता की मांग करते हैं। आत्मकथाकार से सब सच सुनना चाहते है जबकि कवि, कथाकार, उपन्यासकार कोई भी सच नहीं लिखता। इसलिए, कई आत्मकथाकार आत्मकथा न लिखकर उपन्यास लिख देते हैं। वे असुविधाजनक रास्ते पर चलने से बचते हैं। वे अपने को अपने परिचितों को, अपने आत्मीयों को मुश्किल से बचाते हैं, जवाबदेही से बचाते हैं, पर क्या ऐसा करना चाहिए? सच को बताने के लिए जान-जोखिम में नहीं डालनी चाहिए? घर फूंककर तमाशा नहीं देखना चाहिए? आग के दरिया में नहीं कूदना चाहिए? हम हजारों सालों से सत्य का महिमामंडन करते आए हैं। अब समय आ गया है कि झूठ को भी थोड़ा वक्त दें।

"मेरे मुंह से बहुत से झूठ निकलेंगे लेकिन उनमें कहीं सच छिपा होगा" वर्जीनिया वुल्फ का यह कथन क्या हर आत्मकथा लेखक पर लागू नहीं होता है? ये बहुत से झूठ मिलकर क्या कोई और बड़ा, कोई और महान सच नहीं बताते हैं? या ये पाठक को एक महान सच की ओर नहीं ले जाते हैं? कई बार तो झूठ से बनाया हुआ यह सच, सच से अधिक भयानक, सच से अधिक करुण, निर्मम, सच से अधिक सच नहीं होता है? कल्पना से, माया से, भ्रम से, यथार्थ को तोड़-मरोड़ कर बनाया गया यह सच यथार्थ से कहीं अधिक प्रामाणिक, कहीं अधिक सच, कहीं अधिक सशक्त होता है। महान लेखक अपनी लेखनी से झूठ को सच और सच को झूठ बना

देता है। वह बूरे को अच्छा और अच्छे को बुरा बना देता है। उसके सामने दुनियां वही नहीं है जो दिखती है। दुनियां वह भी है जो दिखती नहीं है, मगर है। वह हमारी आंख में उंगली डालकर बताता है कि चीजें वैसी नहीं हैं, जैसी वे दिखती हैं। अभी जो सच माना जा रहा है वह तभी तक सच है जब तक उसे मिथ्या नहीं प्रमाणित कर दिया जाता है।

कवि यथार्थ की पुनर्रचना करता है पुनर्सृष्टि करता है, इसलिए उसे सृष्टा कहा गया है। रचयिता, निर्माता, स्वयंभू ईश्वर कहा गया है। सच्ची कला और ईश्वर का रास्ता एक है। कला अंतिम सत्य को पाने की दिशा में एक अनंत यात्रा है। रचनाकार झूठ से सच की ओर, सच से झूठ की ओर, यथार्थ से कल्पना की ओर, कल्पना से यथार्थ की ओर, निरन्तर आवाजाही करता रहता है। उसकी रचना सत्य को पाने का माध्यम नहीं, स्वयं सत्य है। उसकी कला लाख झूठ हो, मगर उससे बड़ा कोई सत्य नहीं होता। वह पाठक को ऐसे सत्य का साक्षात्कार कराता है जिसे उसने पहले कभी नहीं देखा था न सूना था। वह उसे ऐसी भूमि पर ले जाकर छोड़ देता है जहां कोई हवाई जहाज नहीं जाता। वह एक ऐसी भूमि पर ले जा सकता है, जहां पृथ्वी गोल नहीं है और सूरज हमेशा पूरब में नहीं उगता है। वह सुबह को शाम और शाम को सुबह बताता है। कबीर की उलटबासियां जिस सत्य को दिखाती हैं वह वैज्ञानिक सत्य से भिन्न होकर भी सत्य है।

विज्ञान ने आज हमें सारे रास्ते दिखा दिए हैं। लेकिन अभी भी कई ऐसे रास्ते हैं वे चाहे व्यक्ति के अंतर्मन में ही क्यों न हों, जहां केवल एक रचनाकार ही देर-सबेर पहुंच सकता है। ''जहां न जाए रवि, वहां जाए कवि'' ऐसे ही कवियों के लिए कहा गया है। विज्ञान ने ..... चाहे कल्पना के सारे दरवाजे बंद कर दिए हों, फिर भी रचनाकार कोई न कोई चोर-दरवाजा खोल ही लेता है। कवियों ने हमेशा मिथकों, परंपराओं, पुराकथाओं, अंध-विश्वासों से प्रेरणा ली है।

हम लाख सच को कहने का दम भरें गीता पर कसम खाकर हम कहें कि सच ही कहेंगे, सच के अलावा कुछ नहीं कहेंगे—पर लिखते वक्त हम कोई और ही होते हैं। वेदना के पंक में कोई और ही कमल खिलता है। लिखते वक्त हम वही नहीं रहते जो भोगते वक्त थे। इलियट ने इसे ही ''भोक्ता'' और ''सृष्टा'' अलग-अलग बताया है रौलां बार्थ ने भी कहा है कि ''जो बोलता है, वह नहीं है जो लिखता है और वह जो लिखता है, वह नहीं है जो वह है।'' अपने विषय में एक तटस्थ दूरी, एक ठंडापन होना चाहिए—लिखते वक्त अपने पर केन्द्रित होते हुए भी रचना कहीं अपने को, अपने से अलग करती है, तभी वह दूसरे की होती है, लेखक अपने भीतर जाने क्या-क्या झाड़-झंखाड़ उगाता है, खाद पानी देता हे, उनको सिंचित करता है, खर्च करता है, गुणा भाग करता है। भूलता है, फिर याद में लौट आता है। अपने को ढूंढते हुए अपने को ही खो देता है। लौटता है तो अपने की ही उंगली पकड़कर लौटता है। इस देह की नश्वरता में ही वह ढूंढता है अमरता और इस लोक में रहते हुए भी वह परलोक हो आता है। परकाया में प्रवेश कर लेता है अपने सत्य को पाने के लिए। कवि के सत्य की कसौटी अलग है। सच को मापने का उसका पैमाना अलग है।

"कुछ लेखक स्वयं नहीं लिखते—कोई उनसे लिखवाता है और वे उसके आदेश पर लिखते जाते हैं" मैल्कम काडले की इस बात पर सहमति व्यक्त करते हुए फॉकनर कहते हैं—"मै आवाजों को सुनता हूं और जब मैं उसे लिख लेता हू जो वे कहती हैं, वहीं मुझे सही जान पड़ता है।" एक विचार, एक बिजली, एक जुगनू तो हरेक सच्चे रचनाकार के मन में कौंधता ही है। कृष्णा सोबती ने भी अभी हाल में से यों कहा है—"रचना कभी जाने, कभी अनजाने, किसी एक मुबारक क्षण में रचनाकार के दिल दिमाग पर दस्तक देती है। कभी दबे पांव, एक छोटी सी आहट, किसी लंबी कविता की एक आध पंक्ति, एक टुकड़ा, एक शब्द और दूसरा शब्द लिखने में यह जिन्दगी गुजर जाए। कभी आंख के आगे कोई लौ सी झिलमिलाए-चाहे कि उसे लपककर पकड़ ले और वह हाथ न आए। फिर वहीं बाट, वही प्रतीक्षा।" "मित्रो" इस क्षण को, इस लौ को किसी रिमोट से नहीं पकड़ा जा सकता। एक रचनाकार के सामने हमेशा लहलहाती पृथ्वी नहीं होती है। एक रचनाकार को बंजरपन की यातना से भी लगातार गुजरना पड़ता है। उसे बहुत सारा कूड़ा-करकट, झाड़-झंखाड़ उगाना पड़ता है तभी कभी-कभी कहीं-कहीं कोई फूल खिलता-हंसता-गाता दीख पड़ता है।

रचनाकार का प्रचलित शब्दावली से भी काम नहीं चलता। उसे अपना शब्दकोश बार-बार गढ़ना पड़ता है। नई जमीन, नया मुहावरा बनाना पड़ता है। समुदाय द्वारा सर्वमान्य सच की बजाय अपने लिए किसी और सच को तलाश करनी पड़ती है। यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए माया, भ्रम और विभ्रम का भी सहारा लेना पड़ता है। उसे अपना नरक, अपना स्वर्ग और अपना मायालोक खुद बार-बार रचना पड़ता है और बार-बार तोड़ना भी पड़ता है।

62-ब, लॉ अपार्टमेंट्स, एजीसीआर इन्क्लेव, दिल्ली-110092

MGIPRRND—89 HA/2001—3,000 Copies